जैन संस्कार पाठ्यक्रम

भाग–10

: प्रकाशक :
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत : श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

पुस्तक : **जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-10**

संस्करण : तृतीय, सन् 2021

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : रुपये 15/-

प्रकाशक : **श्री अ.भा.सा. जैन संघ, बीकानेर**

अर्थ सहयोगी : .....

पुस्तक प्राप्ति स्थान : **श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ**
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड, गंगाशहर,
बीकानेर-334401 (राज.)
फोन: 0151-3292177, 2270261

: **आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र**
राणाप्रतापनगर रोड, सुन्दरवास, उदयपुर (राज.)
फोन: 0294-2490717, 2490306

: **श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार**
समता भवन, नौलाईपुरा, रतलाम (मध्यप्रदेश)
फोन: 07412-244443

भूमिका....

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं, जिनमें धार्मिक परीक्षा बोर्ड एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। सन् 1974 से ये परीक्षाएँ निरन्तर चल रही हैं, जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता **1008 श्रद्धेय आचार्य श्री रामलालजी म.सा.** से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नये पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई। अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमें 1 से 12 भाग प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन कर जीवन में कुछ पा सकेंगे, ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक-से-अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान प्रदान करें। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

संयोजक-धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अनुक्रम

क्रं.	विभाग	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	**सूत्र विभाग**		35
	1. श्री दशवैकालिक सूत्र के 9वें अध्ययन का प्रथम व चतुर्थ उद्देशक	10	
	2. श्री उत्तराध्ययन सूत्र का 16वां अध्ययन (मूल, अर्थ)	21	
II	**तत्त्व विभाग**		25
	1. काय स्थिति	39	
	2. गर्भ का थोकड़ा	60	
	3. कर्म प्रज्ञप्ति		
III	**कथा विभाग**		15
	1. आत्मबली और दृढ़धर्मी महासती श्री रंगूजी म.सा.	65	
	2. रोहिणेय चोर (सत्संग का महत्व)	69	
	3. वीर लोकाशाह	72	
IV	**काव्य विभाग**		10
	1. पालो दृढ़ आचार जैनों सब मिलकर....	76	
	2. अमूल्य तत्त्व विचार	77	
V	**सामान्य ज्ञान विभाग**		15
	1. साधक एक परिचय	78	
	2. सचित्त-अचित्त विवेक	82	
	3. सम्मूर्च्छिम थोकड़ा	98	

अस्वाध्यायिक

निम्नलिखित बत्तीस अस्वाध्यायिक के कारणों को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

अंतरिक्ष संबंधी 10 अस्वाध्यायिक

क्र. नाम	अंतरिक्ष संबंधी 10 अस्वाध्याय	काल मर्यादा
1. उल्कापात	रेखायुक्त (पीछे पूँछ के समान) या प्रकाश युक्त तारे का गिरना किसी	एक प्रहर तक
2. दिग्दाह	दिशा में महानगर जलने के समान ऊपर प्रकाश नीचे अधंकार दिखाई देना	एक प्रहर तक
3. गर्जित	मेघ गर्जना होना	दो प्रहर तक
4. विद्युत	बिजली चमकना	एक प्रहर तक

नोट:- सूर्य के साथ आर्द्रा नक्षत्र के योग से लेकर स्वाति नक्षत्र के योग होने तक मेघ गर्जना और बिजली चमकना संबंधी अस्वाध्यायिक नहीं माना जाता। आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र का काल तारीख के हिसाब से 21 जून से 25 अक्टूबर के लगभग होता है।

5. निर्घात	बादल के होने पर या न होने पर व्यन्तर कृत महागर्जना के समान ध्वनि का होना। वर्तमान में बिजली कड़कना/गिरना इसके अन्तर्गत माना जाता है।	आठ प्रहर तक
6. यूपक	शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया व तृतीया को रात्रि की प्रथम पौरुषी पर्यन्त। ये पक्खी के बाद की तीन रात्रियाँ समझना, चाहे पक्खी चतुर्दशी की हो या अमावस्या की।	प्रहर रात्रि तक
7. यक्षादीप्त	आकाश में एक दिशा में बीच-बीच में (एक-एक कर) व्यन्तर (देवता) कृत विद्युत् के समान प्रकाश होना	एक प्रहर तक
8. धूमिका	काली धूँवर (अंधकार युक्त, धुँए के समान) का आना	जब तक रहे
9. महिका	श्वेत धूँवर का आना	जब तक रहे
10. रज उद्घात	चारों दिशाएँ धूल से भर जाने पर सब ओर अंधकार जैसा दिखाई दे (चाहे वायु हो या न हो)	जब तक रहे

(दिग्दाह एवं यक्षादीप्त वर्तमान में कम दृष्टिगोचर होते हैं)

औदारिक संबंधी अस्वाध्यायिक

11-13.हड्डी,
रक्त, माँस

''तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संबंधी अस्वाध्यायिक''

• रक्त सहित चर्म, रुधिर, माँस, अस्थि, अण्डा, अण्डे का कलल या पशु-पक्षी का शव आदि साठ हाथ के भीतर पड़े हो तो उपर्युक्त सभी जब से जीव रहित हुए तब से (चर्म, रूधिर, माँस आदि के रहने पर भी तीन प्रहर के बाद अस्वाध्यायिक नहीं रहता)	तीन प्रहर तक
• किसी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय (बड़ी कायवाले) की जहाँ घात (तिर्यञ्च या मनुष्य के द्वारा) हुई हो तो वहाँ चारों ओर साठ हाथ तक (कम से कम 3 प्रहर टालना आवश्यक है, चाहे सूर्योदय हो भी गया हो)	अगला सूर्योदय न होवे तब तक
• पका हुआ मांस अस्वाध्यायिक नहीं है।	
• साठ हाथ के भीतर जर वाले पशुओं की प्रसूति हो तो जर गिरे तब तक और जर गिरने के बाद	तीन प्रहर तक
• साठ हाथ के भीतर बिना जर वाले पशुओं की प्रसूति के बाद	तीन प्रहर तक

''गर्भज मनुष्य संबंधी अस्वाध्यायिक''

• सौ हाथ के भीतर रक्त सहित चर्म, खून, माँस यदि पड़े हो तो ये पदार्थ जब से जीव रहित हुए, तब से (उसके बाद नहीं, चाहे वह पदार्थ वहाँ पड़ा हो या न हो)	आठ प्रहर तक
• जिस गली/गृहपंक्ति में से शव जब तक नहीं निकाला जाए तब तक उस गली/गृहपंक्ति में अस्वाध्यायिक रहता है।	
• मनुष्य की हड्डी सौ हाथ के भीतर हो ता जब से जीव रहित हुई तब से (12 वर्ष के बाद अस्वाध्यायिक नहीं। 12 वर्ष के पहले ही यदि अस्थि जली हुई हो या वर्षा आने से धुल गई हो तो जलने व धुलने के बाद अस्वाध्यायिक नहीं रहता)	बारह वर्ष तक
• खून यदि विवर्ण हो गया हो यानि उसकी पर्याय/रंग बदल गया हो तो अस्वाध्यायिक नहीं होता	
• बालक-बालिका के जन्म के क्रमशः सात और आठ दिन तक 100 हाथ के भीतर अस्वाध्यायिक माना जाता है।	

14. अशुचिसामन्त	मल, मूत्र, कलेवर आदि अशुभ पदार्थ	दिखाई दे या उनकी दुर्गन्ध आये
15. श्मशानसामन्त	श्मशान भूमि के चारों ओर	100-100 हाथ तक
16. चन्द्रग्रहण	चन्द्रग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहाँ	जघन्य 8 प्रहर और उत्कृष्ट 12 प्रहर तक
17. सूर्यग्रहण	सूर्यग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहाँ	जघन्य 12 प्रहर और उत्कृष्ट 16 प्रहर तक

चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहाँ अस्वाध्यायिक समझना।

18. पतन	प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री के कालगत हो जाने पर जिस क्षेत्र में वातावरण विक्षोभ हो तो	जब तक विक्षोभ रहे
19. राजव्युद्ग्रह	युद्ध भूमि के आसपास	जब तक युद्धजनित क्षोभ रहे
20. उपाश्रय में औदारिक शरीर	उपाश्रय की सीमा में तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय या मनुष्य का शव पड़ा रहे	जब तक शव पड़ा रहे तब तक
21-28. चार पूर्णिमा और इसके बाद की प्रतिपदा	आषाढ़, आश्विन, कार्तिक व चैत्र इन चारों पूर्णिमाओं को तथा इन पूर्णिमा के बाद की प्रतिपदाओं को	दिन-रात

- जिस दिन पंचांग (कैलेण्डर) में पूनम व प्रतिपदा बताई हो उस दिन अस्वाध्यायिक मानना।
- यदि दो पूनम हो तो दोनों पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना, प्रतिपदा को नहीं।
- यदि दो प्रतिपदा हो तो प्रथम प्रतिपदा और पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना।
- यदि पूर्णिमा क्षय हो तो चतुर्दशी और प्रतिपदा को अस्वाध्यायिक मानना।
- यदि प्रतिपदा क्षय हुई हो तो चतुर्दशी व पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना।

29-32. संधि समय	सूर्योदय एवं सूर्यास्त, मध्यान्ह व अर्द्धरात्रि इन चार सन्ध्याओं में	एक-एक मुहूर्त्त

(सूर्योदय एवं सूर्यास्त के पूर्व व पश्चात् आधा-आधा मुहूर्त्त और दिन व रात्रि के मध्य भाग के पूर्व व पश्चात् आधा-आधा मुहूर्त्त तक अस्वाध्यायिक माना जाता है।)

कालिक सूत्र-11 अंग, 4 छेद तथा मूल सूत्र में एक उत्तराध्ययन सूत्र। उपांग सूत्र में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, निरयावलिया पंचक (निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा)। शेष सभी **उत्कालिक सूत्र** हैं। किन्तु 32वाँ आवश्यक सूत्र **नोकालिक- नोउत्कालिक सूत्र** है।

कालिक सूत्र का स्वाध्याय दिन एवं रात्रि के प्रथम एवं अंतिम प्रहर में एवं उत्कालिक सूत्र का स्वाध्याय किसी भी समय अस्वाध्यायिक के कारणों को टालकर करना चाहिए। उत्काल में कालिक सूत्र की वाचना 9 गाथा से अधिक नहीं दी जा सकती।

स्वाध्याय का वाचन करने के पश्चात् 'आगमे तिविहे' का पाठ बोलें। एक प्रहर लगभग 3 घंटे का होता है।

-----●-----

सूत्र विभाग

1. विनय-एक परिचय

विनय समाधि है, विनय तप है और तप धर्म है, अतः साधक को विनय धारण करना चाहिए। विनय का संबंध हृदय से है, जिसका हृदय कोमल होता है वह परिजनों का विनय करता है। अहंकार का त्याग ही विनय का सही स्वरूप है। अहंकार पत्थर की तरह कठोर होता है, वह टूट सकता है पर झुक नहीं सकता। जिसका हृदय नम्र है, मुलायम है, उसकी वाणी और आचरण सभी में कोमलता की मधुर सुवास होती है। ''जे एगं नमे से बहुं नमे'' जो एक अपने को नमा लेता है वह बहुतों को नमा लेता है। विनय आत्मा का एक ऐसा गुण है, जिससे आत्मा सरल, शुद्ध और निर्मल बनती है। ''विणए ठविज्ज अप्पाणं इच्छंतो हियमप्पणो'' आत्महितैषी साधक अपने को विनय में स्थिर करे।

प्रस्तुत अध्ययन दशवैकालिक सूत्र के नौवें अध्ययन विनय समाधि से लिया गया है। नौवें अध्ययन के चार उद्देशक है, उसमें से इस भाग में प्रथम एवं चतुर्थ उद्देशक को लिया गया है।

प्रथम उद्देशक में विविध उपमाओं के द्वारा आचार्य या गुरु (चाहे वह अल्पवयस्क या अल्प्रज्ञ हो) की अविनय, अवज्ञा, अवहेलना या आशातना करने के दुष्परिणामों का निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् यह बताया गया है कि गुरु के प्रति विनय, सत्कार-नमस्कार, हाथ जोड़ना, सेवा सुश्रुषा करना, मन, वचन, काया से आदर आदि क्यों करना चाहिये? अंत में गुरु-विनय के उत्कृष्ट फल-अनुत्तर ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति, कर्म-निर्जरा, समाधि-योग, श्रुतशीलसम्पन्नता, बौद्धिक वैभव, मोक्ष एवं अनुत्तरसिद्धि आदि बताएं हैं।

चतुर्थ उद्देशक में विनय, श्रुत, तप और आचार के द्वारा विनय समाधि के चार स्थानों का विशद निरूपण किया गया हैं। अंत में चारों समाधियों के ज्ञाता और आचरण करने वाले को जन्म-मरण से सर्वथा मुक्ति अथवा दिव्यलोक की प्राप्ति बताई है।

-----●-----

'विनय समाधि' नामक नौवें अध्ययन का पहला उद्देशक

थंभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फलं व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

अन्वयार्थ-जो साधु (थंभा) अहंकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणयं) विनय धर्म की (न सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नहीं करता है तो (सो चेव) के अहंकारादि दुर्गुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणों को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बांस का (फलं) फल (वहाय होइ) स्वयं बांस को नष्ट कर देता है अर्थात् जैसे बांस के फल आने पर बांस का नाश हो जाता है उसी प्रकार साधु की आत्मा में अविनय उत्पन्न करने वाले अहंकारादि दुर्गुण पैदा होने पर चारित्र का नाश हो जाता है ।।1।।

जे यावि मंदे त्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करेंति आसायण ते गुरूणं ॥२॥

अन्वयार्थ- (जे) जो साधु (गुरुं) गुरु को (मंदे त्ति) यह मंद बुद्धि है (विइत्ता) ऐसा समझकर (यावि) अथवा (इमे) यह (डहरे) बालक है (अप्पसुए त्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (नच्चा) मानकर (हीलंति) हीलना-निन्दा करते हैं (ते) वे (गुरूणं) गुरुजनों की (आसायण) आशातना (करेंति) करते हैं जिससे उन्हें (मिच्छं) मिथ्यात्व की (पडिवज्जमाणा) प्राप्ति होती है ।।2।।

पगईइॅ मंदा वि भवंति एगे, डहरा वि य जे सुय-बुद्धोववेया।
आयारमंता गुण-सुट्ठियप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ॥३॥

अन्वयार्थ- (एगे) बहुत-से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइॅ) स्वभाव से (मंदा वि) मंदबुद्धि (भवंति) होते हैं (य) तथा (जे) बहुत-से (डहरावि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुय-बुद्धोववेया) शास्त्रों के ज्ञाता एवं बुद्धिमान् होते हैं-ज्ञान में न्यूनाधिक होने पर भी (आयारमंता) सदाचारी और (गुण-सुट्ठियप्पा) मूलगुण-उत्तरगुणों का सम्यक् पालन करने वाले गुरुजनों का अपमान नहीं करना चाहिए क्योंकि (सिहिरिव) जिस प्रकार

अग्नि ईंधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनों की हीलना उसके ज्ञानादि गुणों को (भास कुज्जा) नष्ट कर देती है अर्थात् गुरुजनों की आशातना करने से ज्ञानादि गुणों का नाश हो जाता है ।।3।।

जे यावि नागं डहरे त्ति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ।
एवाऽऽयरियं पि हु हीलयंतो, नियच्छई जाइपहं खु मंदे ॥४॥

अन्वयार्थ- (जे यावि) जो कोई मूर्ख मनुष्य (डहरे त्ति) यह छोटा है-इस प्रकार (नच्चा) जानकर (नागं) सांप को (आसायए) छेड़ता है-लकड़ी आदि से उसे सताता है (हु) तो (से) वह (अहियाय) उस सताने वाले के लिए अहितकारी (होइ) होता है अर्थात् उसे काट खाता है। (एव) उसी प्रकार (आऽऽयरियं पि) आचार्य महाराज की (हीलयंतो) हीलना करने वाला (मंदे) मन्दबुद्धि शिष्य (खु) निश्चय ही (जाइपहं) एकेन्द्रियादि जातियों में (नियच्छई) चला जाता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में फंसकर अनन्तसंसारी बन जाता है ।।4।।

आसीविसो यावि परं सुरुट्ठो, किं जीयनासाओॅ परं नु कुज्जा।
आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो ॥५॥

अन्वयार्थ- (आसीविसो) दृष्टिविष सांप (परं) अन्यन्त (सुरुट्ठो यावि) कुपित हो जाने पर भी (जीयनासाओॅ) प्राणानाश से (परं) अधिक (किं कुज्जा) और क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता किन्तु जो शिष्य (आयरियपाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज को (अप्पसन्ना) अप्रसन्न करता है वह शिष्य (आसायण) गुरु की आशातना करने से (अबोहि) मिथ्यात्व को प्राप्त होता है जिससे (पुण) फिर (नत्थि मोक्खो) उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ।।5।।

(सांप का काटा हुआ प्राणी एक ही बार मरता है। किन्तु आचार्य महाराज की आशातना करने वाले को बारम्बार जन्म-मरण करना पड़ता है।)

जो पावगं जलियमवक्कमिज्जा, आसीविसं वा वि हु कोवएज्जा।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी, एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं ॥६॥

अन्वयार्थ- जो अभिमानी शिष्य (गुरूणं) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (जलियं) जलती हुई (पावगं) अग्नि को (अवक्कमिज्जा) पैरों से कुचलकर बुझाना चाहता है (वा वि) अथवा जो (आसीविसं) दृष्टिविष सर्प को (हु

कोवएज्जा) कुपित करता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (जीवियट्ठी) जीने की इच्छा से (विसं) हलाहल विष को (खायइ) खाता है ।।6।।

सिया हु से पावय नो डहेज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
सिया विसं हलाहलं न मारे, न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ।।७।।

अन्वयार्थ- (सिया हु) यदि कदाचित् (से) अग्नि के ऊपर पैर रखने वाले पुरुष के पैर को (पावय) अग्नि (नो डहेज्जा) न जलावे (वा) अथवा (कुविओ) कुपित हुआ (आसीविसो) दृष्टि-विष सर्प भी (न भक्खे) न काटे (सिया) कदाचित् (हलाहलं) हलाहल नामक (विसं) तीव्र विष भी (न मारे) अपना असर न दिखावे अर्थात् खाने वाले को न मारे। यद्यपि ये सब बातें असंभव हैं तथापि विद्याबल एवं मंत्रबल से यदि कदाचित् संभव हो भी जाये किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले को (न यावि मोक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ।।7।।

जो पव्वयं सिरसा भेत्तुमिच्छे, सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं, एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं ।।८।।

अन्वयार्थ- जो दुर्बुद्धि शिष्य (गुरूणं) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (पव्वयं) पर्वत को (सिरसा) मस्तक की टक्कर से (भेत्तुं) फोड़ना (इच्छे) चाहता है (व) अथवा (सुत्तं) सोते हुए (सीहं) सिंह को (पडिबोहएज्जा) लात मारकर जगाता है (वा) अथवा (जो) जो मुर्ख (सत्ति अग्गे) तीक्ष्ण तलवार की धार पर (पहारं दए) मुष्टि का प्रहार करता है ।।8।।

(उपरोक्त कार्य करने वाला पुरुष अपना ही अहित करता है, इसी तरह गुरु की आशातना करने वाला अविनीत शिष्य भी अपना ही अहित करता है।)

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिंदेज्ज व सत्तिअग्गं, न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ।।९।।

अन्वयार्थ- (सिया हु) यदि कदाचित् कोई वासुदेवादि शक्तिशाली पुरुष (सीसेण) मस्तक की टक्कर से (गिरिं पि) पर्वत को भी (भिंदे) चूर-चूर कर दे (हु) अथवा (सिया) कदाचित् (कुविओ) लात मार कर जगाने से कुपित हुआ (सीहो) सिंह भी (न भक्खे) न खावे (व) अथवा

(सिया) कदाचित् (सत्तिअग्गं) तलवार की तीक्ष्ण धार पर मुष्टि प्रहार करने पर भी (न भिंदेज्ज) हाथ न कटे अर्थात् ये असंभव बातें संभव हो भी जाये किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले दुर्बुद्धि शिष्य को (न यावि मोक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ।।9।।

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा ।।१०।।

अन्वयार्थ- (आयारियपाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज की (आसायण) आशातना करके (पुण अप्पसन्ना) उन्हें अप्रसन्न करने वाले पुरुष को (अबोहि) मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है जिससे (नत्थि मोक्खो) वह मोक्ष सुख का अधिकारी नहीं हो सकता (तम्हा) इसलिए (अणाबाहसुहाभिकंखी) मोक्ष के अनाबाध सुख की चाह रखने वाला पुरुष (गुरुप्पसायाभिमुहो) गुरु महाराज को प्रसन्न करने में (रमेज्जा) सदा प्रयत्नशील रहे ।।10।।

जहाऽऽहिअग्गी जलणं नमंसे, नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं।
एवाऽऽयरियं उवचिट्ठएज्जा, अणंतणाणोवगओ वि संतो ।।११।।

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं) नाना प्रकार की घृतादि की आहुतियों से तथा वेदमंत्रों से संस्कार की हुई (जलणं) यज्ञ की अग्नि को (नमंसे) नमस्कार करता है (एव) उसी प्रकार (अणंतणाणोवगओ वि) अनन्त ज्ञानसंपन्न (संतो) हो जाने पर भी शिष्य को (आयरियं) आचार्य महाराज की (उवचिट्ठएज्जा) विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिए ।।11।।

जस्संतिए धम्मपयाइँ सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं पउंजे।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ, काय ग्गिरा भो! मणसा य निच्चं ।।१२।।

अन्वयार्थ- (भो) गुरु महाराज शिष्य को कहते हैं कि शिष्य का यह कर्तव्य है कि (जस्संतिए) जिन गुरु महाराज के पास (धम्मपयाइँ) धर्मशास्त्रों की (सिक्खे) शिक्षा प्राप्त करे (तस्संतिए) उनकी सदा (वेणइयं) विनयभक्ति (पउंजे) करे (पंजलीओ) दोनों हाथ जोड़कर (सिरसा) और मस्तक झुकाकर नमस्कार करे (य) और (काय ग्गिरा मणसा) मन, वचन, काया से (निच्चं) सदा (सक्कारए) सत्कार करे अर्थात् गुरु के आने पर खड़े होना, उन्हें वन्दना करना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आदि कार्यों से उनका विनय करे ।।12।।

लज्जा दया संजम बंभचेरं, कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं।
जे मे गुरू सययमणुसासयंति, ते हं गुरू सययं पूययामि ॥१३॥

अन्वयार्थ- (लज्जा) अधर्म के प्रति लज्जा-भय, (दया) दया अनुकम्पा (संजम) संयम और (बंभचेरं) ब्रह्मचर्य- ये चारों (कल्लाणभागिस्स) अपनी आत्मा का हित चाहने वाले मुनि के लिए (विसोहिठाणं) विशुद्धि के स्थान हैं। इसलिए शिष्य को यह भावना रखनी चाहिए कि (जे) जो (गुरू) गुरु महाराज (मे) मुझे (सययं) सदा (अणुसासयंति) शिक्षा देते हैं (ते हं गुरू) उन गुरु महाराज की मुझे (सययं) सदा (पूययामि) विनय-भक्ति करनी चाहिए ॥13॥

जहा निसंते तवतऽच्चिमाली, पभासई भारह केवलं तु।
एवाऽऽयरिओ सुयसीलबुद्धिए, विरायई सुरमज्झे व इंदो ॥१४॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (निसंते) रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् प्रात:काल (तवतऽच्चिमाली) तेज से देदीप्यमान सूर्य अपनी किरणों से (भारह केवलं तु) सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को (पभासई) प्रकाशित करता है (एव) उसी प्रकार (आयरिओ) आचार्य महाराज (सुयसीलबुद्धिए) अपने ज्ञान, चारित्र तथा तात्त्विक उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं और (व) जिस प्रकार (सुरमज्झे) देवों में (इंदो) इन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार आचार्य महाराज भी साधुओं के बीच में (विरायई) शोभित होते हैं ॥14॥

जहा ससी कोमुइजोगजुत्ते, नक्खत्त-तारागणपरिवुडप्पा।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के, एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥१५॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (नक्खत्त-तारागणपरिवुडप्पा) नक्षत्र और ताराओं के समूह से घिरा हुआ (कोमुइजोगजुत्ते) कार्तिक पूर्णमासी को उदय हुआ (ससी) चन्द्रमा (अब्भमुक्के) बादलों से रहित (विमले) अतीव निर्मल (खे) आकाश में (सोहई) शोभित होता है (एवं) इसी प्रकार (गणी) आचार्य महाराज (भिक्खुमज्झे) साधु समूह के मध्य में (सोहइ) शोभित होते हैं ॥15॥

महागरा आयरिया महेसी, समाहिजोगाण सुयसीलबुद्धिए।
संपाविउकामे अणुत्तराइं, उवट्ठिओ तोसएॅ धम्मकामी ॥१६॥

अन्वयार्थ- (अणुत्तराइं) उत्कृष्ट ज्ञानादि भावरत्नों को (संपाविउकामे) प्राप्त करने की इच्छा वाला (धम्मकामी) श्रुतचारित्र रूप धर्म का अभिलाषी मुनि (महागरा) ज्ञानादि रत्नों के भण्डार (सुयसीलबुद्धिए) श्रुत चारित्र और बुद्धि से युक्त (समाहिजोगाण) समाधिवंत (महेसी) महर्षि (आयरिया) आचार्य महाराज की (उवट्ठिओ) आराधना करे और (तोसएॅ) उनकी विनय-भक्ति करके उन्हें प्रसन्न रखे ॥16॥

सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं, सुस्सूसए आयरिएऽप्पमत्तो।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे, से पावई सिद्धिमणुत्तरं ॥१७॥

अन्वयार्थ- (मेहावी) गुरु वचनों को यथार्थ रूप से धारण करने की बुद्धि वाला विनीत शिष्य (सुभासियाइं) तीर्थंकर भगवान् द्वारा फरमाये हुए विनयाराधना के शिक्षाप्रद वचनों को (सोच्चाण) सुनकर (अप्पमत्तो) प्रमादरहित होकर (आयरिए) आचार्य महाराज की (सुस्सूसए) सेवा-शुश्रूषा करे। इस प्रकार सेवा करने से (से) वह विनीत शिष्य (अणेगे) अनेक (गुणे) सद्गुणों को (आराहइत्ताण) प्राप्त करके (सिद्धिमणुत्तरं) उत्तम सिद्ध गति को (पावइ) प्राप्त होता है ॥17॥ (त्ति बेमि) श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि- आयुष्मन् जम्बू! मैंने जैसा भगवान महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।

-----●-----

'विनय समाधि' नामक नौवें अध्ययन का चौथा उद्देशक

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ॥१॥

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता? इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ॥२॥

तं जहा-विणयसमाही, सुयसमाही, तवसमाही, आयारसमाही ॥३॥

अन्वयार्थ- श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि (आउसं) हे आयुष्मान् जम्बू! (तेणं भगवया) उन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एवं) इस प्रकार (अक्खायं) फरमाया था वह (मे) मैंने (सुयं) सुना है। यथा (इह-खलु) जैन सिद्धान्त में (थेरेहिं) स्थविर (भगवंतेहिं) भगवंतों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (चत्तारि) चार प्रकार (पण्णत्ता) बतलाये हैं। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य! (थेरेहिं भगवंतेहिं) उन स्थविर भगवंतों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (ते) वे (चत्तारि) चार प्रकार (कयरे) कौन से (पण्णत्ता) बतलाये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि- हे आयुष्मान् शिष्य! (थेरेहिं) उन स्थविर (भगवंतेहिं) भगवंतों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार प्रकार (पण्णत्ता) बतलाये हैं। (तं जहा) जैसे कि :-(विणयसमाही) विनयसमाधि, (सुयसमाही) श्रुतसमाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आयारसमाही) आचारसमाधि ॥1-3॥

विणए, सुए तवे य आयारे निच्च पंडिया।
अभिरामयंति अप्पाणं, जे भवंति जिइंदिया ॥४॥

अन्वयार्थ- (जे) जो (जिइंदिया) जितेन्द्रिय साधु (विणए) विनय में (सुए) श्रुत में (तवे) तप में (य) और (आयारे) आचार में (निच्च) सदा (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (अभिरामयंति) लगाये रहते हैं (पंडिया) वे ही सच्चे पण्डित (भवंति) कहलाते हैं ॥4॥

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ। तं जहा- अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ, सम्मं संपडिवज्जइ, वेयमाराहइ, न य भवइ अत्तसंपग्गहिए चउत्थं पयं भवइ ॥५॥

अन्वयार्थ- (विणयसमाही खलु) विनयसमाधि (चउव्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तंजहा) जैसे कि :- (अणुसासिज्जंतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उस गुरु को परमोपकारी जानकर (सुस्सूसइ) सदा सेवा-शुश्रुषा करना एवं उनकी आज्ञा को सुनने की इच्छा रखना। (सम्मं संपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा को सुनकर उसके अभिप्राय को अच्छी तरह समझना। (वेयमाराहइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एवं श्रुतज्ञान की आराधना करना। (न य भवइ अत्तसंपग्गहिए) अभिमान न करना एवं आत्मप्रशंसा न करना (चउत्थं) यह चौथा (पयं) भेद (भवइ) है ॥5॥

भवइ य इत्थ सिलोगो-

पेहेइ हियाणुसासणं, सुस्सूसइ तं च पुणो अहिट्ठिए।
न य माणमएण मज्जई, विणयसमाहिए आययट्ठिए ॥६॥

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है:-

(विणयसमाहि) विनयसमाधिपूर्वक (आययट्ठिए) अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासणं) हितकारी शिक्षा सुनने की सदा (पेहेइ) इच्छा करने (च) और (तं) गुरु की आज्ञा को (सुस्सूसई) शिरोधार्य करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठिए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और विनयी होने का (न माणमएण मज्जई) अभिमान न करे ॥6॥

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तंजहा-
'सुयं मे भविस्सइ' त्ति अज्झाइयव्वं भवइ,
'एगग्गचित्तो भविस्सामि' त्ति अज्झाइयव्वं भवइ,
'अप्पाणं ठावइस्सामि' त्ति अज्झाइयव्वं भवइ,
'ठिओ परं ठावइस्सामि' त्ति अज्झाइयव्वं भवइ चउत्थं पयं भवइ ॥७॥

अन्वयार्थ- (सुयसमाही) श्रुतसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तं जहा) वे इस प्रकार हैं:- (मे) अध्ययन करने से मुझे (सुयं) श्रुतज्ञान का (भविस्सइत्ति) लाभ होगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन करे। अध्ययन करने से (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता (भविस्सामि त्ति) होगी ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन

करे। (अप्पाणं) मैं अपनी आत्मा को (ठावइस्सामि त्ति) धर्म में स्थिर करूंगा-ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन करे। (ठिओ) यदि मैं अपने धर्म में स्थिर होऊंगा तो (परं) दूसरों को भी (ठावइस्सामि त्ति) धर्म में स्थिर कर सकूंगा-ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन करे (चउत्थं) यह अंतिम चौथा (पयं) पद (भवइ) है ।।7।।

भवइ य इत्थ सिलोगो-

नाणमेगग्गचित्तो य, ठिओ ठावयई परं।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहिए ।।८।।

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है:-

(सुयाणि) शास्त्रों का (अहिज्जित्ता) अध्ययन करने से (नाणं) ज्ञान की प्राप्ति होती है (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता होती है (ठिओ य) अपनी आत्मा को धर्म में स्थिर करता है (य) और (परं) दूसरों को भी (ठावयई) धर्म में स्थिर करता है इसलिए मुनि को सदा (सुयसमाहिए) श्रुतसमाधि में (रओ) संलग्न रहना चाहिए ।।8।।

चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ। तं जहा-
नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा,
नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा,
नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा,
नऽन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा चउत्थं पयं भवइ ।।९।।

अन्वयार्थ- (तवसमाही) तपसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तं जहा) वे इस प्रकार हैं- (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखों के लिए एवं किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिट्ठेज्जा) न करें। (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखों के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिट्ठेज्जा) न करे। (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (तवं) तपस्या (नो अहिट्ठेज्जा) न करे। (अन्नत्थनिज्जरट्ठयाए) कर्म निर्जरा के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिट्ठेज्जा) न करे (चउत्थं) यह अंतिम चतुर्थ (पयं) पद (भवइ) है ।।9।।

भवइ य इत्थ सिलोगो-

विविहगुणतवोरए य निच्चं, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ।।१०।।

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी है। वह इस प्रकार है-

मोक्षाभिलाषी मुनि को चाहिए कि वह (सया) सदा (तवसमाहिए) तपसमाधि में (जुत्तो) संलग्न रहे तथा (निच्चं) निरन्तर (विविहगुणतवोरए) विविध गुणयुक्त तप में रत रहता हुआ वह मुनि (निरासए) इहलौकिक और पारलौकिक सुखों के लिए आशा न रक्खे किन्तु (निज्जरट्ठिए) केवल कर्मनिर्जरा के लिए तप करे (तवसा) इस प्रकार के तप से वह (पुराणपावगं) पूर्वसंचित पापकर्मों को (धुणइ) नष्ट कर डालता है ।।10।।

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ। तं जहा-
नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा,
नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा,
नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा,
नऽन्नत्थ अरिहंतेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठेज्जा चउत्थं पयं भवइ ।।११।।

अन्वयार्थ- (आयारसमाही) आचारसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तं जहा) वे इस प्रकार हैं- (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखों के लिए एवं किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (आयार) आचार का पालन (नो अहिट्ठेज्जा) न करे। (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखों के लिए (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठेज्जा) न करे। (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठेज्जा) न करे। (अरिहंतेहिं हेऊहिं अन्नत्थ) जैन सिद्धान्त में कहे हुए कारणों के अतिरिक्त किसी के लिए भी (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठेज्जा) न करे किन्तु आते हुए आश्रवों के निरोध के लिए आचार का पालन करे क्योंकि किसी प्रकार की आशा न रखकर आचार का पालन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है-(चउत्थं) यह अंतिम चतुर्थ (पयं) पद (भवइ) है ।।11।।

भवइ य इत्थ सिलोगो-

जिणवयणरए अतिंतिणे, पडिपुण्णययमाययट्ठिए।
आयारसमाहिसंवुडे, भवइ य दंते भावसंधए ॥१२॥

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है-

(जिणवयणरए) जिन-वचनों पर अटल श्रद्धा रखने वाला (अतिंतिणे) कठोर वचन न बोलने वाला (पडिपुण्ण) शास्त्रों के तत्त्वों को भली-भांति जानने वाला (अययं) निरन्तर (आययट्ठिए) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला (दंते) इन्द्रियों का दमन करने वाला (य) और (आयारसमाहिसंवुडे) आचारसमाधि द्वारा आश्रवों का निरोध करने वाला मुनि (भावसंधए भवइ) शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥12॥

अभिगयचउरोसमाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहियप्पओ।
विउलहियसुहावहं पुणो, कुव्वइ य सो पयखेममप्पणो ॥१३॥

अन्वयार्थ- (सुविसुद्धो) निर्मल चित्त वाला (सुसमाहियप्पओ) अपनी आत्मा को संयम में स्थिर रखने वाला (सो) मुनि (चउरो) चारों प्रकार की (समाहिओ) समाधिओं के स्वरूप को (अभिगय) जानकर (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (विउलहिय) पूर्ण हितकारी (य) और (सुहावहं) सुखकारी (पुणो) एवं (खेमं) कल्याणकारी (पय) निर्वाण पद को (कुव्वइ) प्राप्त करता है ॥13॥

जाई-मरणाओ मुच्चई, इत्थंथं च जहाति सव्वसो।
सिद्धे वा भवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥१४॥ त्ति बेमि॥

अन्वयार्थ- उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला मुनि (इत्थंथं-इत्थत्थं) नरकादि पर्यायों का (सव्वसो) सर्वथा (जहाति) त्याग कर देता है अर्थात् नरकादि गतियों में नहीं जाता (य) किन्तु वह (जाई-मरणाओ) जन्म-मरण के चक्कर से (मुच्चई) छूट जाता है (वा) तथा (सासए) शाश्वत (सिद्धे) सिद्ध (भवइ) हो जाता है (वा) अथवा (अप्परए) यदि कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो अल्प काम-विकार वाला- उत्तम कोटि का (महिड्ढिए) महान् ऋद्धिसंपन्न (देवे) अनुत्तर विमानवासी देव होता है ॥14॥ (त्ति बेमि) श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि-हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने जैसा भगवान महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।

-----●-----

श्री उत्तराध्ययन सूत्र १६वां अध्ययन

।। सोलसमं बंभचेरसमाहिठाणं अज्झयणं ।।

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि-ठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहि-बहुले, गुत्ते गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

[1] आयुष्मन्! मैंने सुना है कि भगवान ने ऐसा कहा है- स्थविर भगवन्तों ने निर्ग्रन्थप्रवचन में (या इस क्षेत्र में) दस ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनको अर्थरूप से निश्चित करके, भिक्षु संयम, संवर (आश्रवद्वारों का निरोध) तथा समाधि (चित की स्वस्थता) से उत्तरोत्तर अधिकाधिक अभ्यस्त हों; मन-वचन-काया-गुप्तियों से गुप्त रहे, इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से बचाए, ब्रह्मचर्य को गुप्तियों के माधयम से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे।

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहि-बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा?

[2] स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्यसमाधि के वे कौन-से दस स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनका अर्थतः निश्चय करके, भिक्षुसंयम, संवर तथा समाधि से उत्तरोत्तर अधिकाधिक अभ्यस्त हो, मन-वचन-काया की गुप्तियों से गुप्त रहे, इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से बचाए, ब्रह्मचर्य को गुप्तियों के माध्यम से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे?

प्रथम ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहि-बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा। तं जहा-विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे। नो इत्थि-पसु-पंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे।

तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थि-पसु-पंडग-संसत्ताइं

सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेजा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणेज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थि-पसु- पंडग-संसत्ताइं सयणा-सणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे।।1।।

[3] स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य-समाधि के ये दस समाधिस्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनका अर्थतः निश्चय करके भिक्षु संयम, संवर तथा समाधि से उत्तरोत्तर अधिकाधिक अभ्यस्त हो, मन-वचन-काया की गुप्तियों से गुप्त रहे, इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ गुप्तियों के माध्यम से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे।

(उन दस समाधिस्थानों में से) प्रथम समाधिस्थान इस प्रकार है—जो विविक्त—एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है वह निर्ग्रन्थ है। (अर्थात्) जो स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त (आकीर्ण) शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] ऐसा पूछने का आचार्य कहते हैं—जो स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का सेवन करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा उसके ब्रह्मचर्य (संयम) का विनाश हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, या कोई दीर्घकालिक (लम्बे समय का) रोग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए स्त्री-पशु-नपुंसक से संशक्त शयन और आसन का जो साधु सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है, (ऐसा कहा गया)।

विवेचन—ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानों की सुदृढता—साधु को ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानों की सुदृढता के लिए यहाँ नवसूत्री बताई गई है—(1) इन स्थानों का भलीभांति श्रवण, (2) अर्थ पर विचार, (3, 4, 5) संयम का, संवर का और समाधि का अधिकाधिक अभ्यास, (6) तीन गुप्तियों से मन, वाणी एवं शरीर का गोपन, (7) इन्द्रियों की विषयों से रक्षा, (8) नवविधगुप्तियों से ब्रह्मचर्य की सुरक्षा और (9) सदैव अप्रमत्त-अप्रतिबद्ध विहार।

प्रथम समाधिस्थान—विविक्त शयनासनसेवन— **विविक्त :** अर्थात्—स्त्री (दैवी, मानुषी या तिर्यंची), पशु (गाय भैंस, सांड, भैंसा, बकरा-बकरी आदि) और पण्डक—नपुंसक से संसक्त अर्थात् संसर्ग वाला न हो। यहाँ प्रथम विधिमुख से कथन है, तत्पश्चात् निषेधमुख से कथन है, जिससे विविक्त का तात्पर्य और स्पष्ट हो जाता है।

सयणासणाइं : शयन और आसन का अर्थ—शयन के तीन अर्थ शास्त्रीय दृष्टि से—(1) शय्या, बिछौना, संस्तारण, (2) सोने के लिए पट्टा आदि, (3) उपलक्षण से वसति (उपाश्रय) को भी शय्या कहते हैं। **आसन** का अर्थ है—जिस पर बैठा जाए, जैसे—चौकी, बाजोट (पादपीठ) या केवल आसन, पादप्रोञ्छन आदि।[1]

नो इत्थी० : वाक्य का आशय—जिस निवास स्थान में स्त्री-पशु-नपुंसक का निवास न हो या दिन या रात्रि में अकेली स्त्री आदि का संसर्ग न हो अथवा जिस पट्टे, शय्या, आसन, चौकी आदि पर साधु बैठा या सोया हो, उसी पर स्त्री आदि बैठे या सोए न हों। **विविक्त शयनासन न होने से ७ बड़ी हानियां**—(1) शंका, (2) कांक्षा, (3) विचिकित्सा, (4) ब्रह्मचर्य-भंग, (5) उन्माद, (6) दीर्घकालिक रोग और आंतक, (7) जिन-प्ररूपित धर्म से भ्रष्टता, इन सात हानियों की संभावना है। **इनकी व्याख्या—शंका**—साधु को अथवा साधु के ब्रह्मचर्य के विषय में दूसरों को शंका हो सकती है कि यह स्त्री आदि से संसक्तस्थान आदि का सेवन करता है, अतः ब्रह्मचारी है या नहीं? अथवा मैथुनसेवन करने से नौ लाख सूक्ष्म जीवों की विराधना आदि दोष बताए हैं, वे यथार्थ हैं या नहीं? या ब्रह्मचर्यपालन करने से कोई लाभ है या नहीं, तीर्थंकरों ने अब्रह्मचर्य का निषेध किया है या यों ही शास्त्र में लिख दिया है? अब्रह्मचर्य में क्या हानि है। **कांक्षा**—शंका के पश्चात् उत्पन्न होने वाली अब्रह्मचर्य की या स्त्रीसहवास आदि की इच्छा। **विचिकित्सा**—चित्तविप्लव। जब भोगाकांक्षा तीव्र हो जाती है, तब मन समूचे धर्म के प्रति विद्रोह कर बैठता है या व्यर्थ के कुतर्क या कुविकल्प उठाने लगता है, यह विचिकित्सा है। यथा—इस असार संसार में कोई सारभूत वस्तु है तो वह सुन्दरी है। अथवा इतना कष्ट उठाकर ब्रह्मचर्यपालन का कुछ भी फल है या नहीं? यह भी विचिकित्सा है। **भेद**—जब विचिकित्सा तीव्र हो जाती है, तब

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 423

झटपट, ब्रह्मचर्य का भंग करके चारित्र का नाश करना भेद है। **उन्माद**–ब्रह्मचर्य के प्रति विश्वास उठ जाने या उसके पालन में आनन्द न मानने की दशा में बलात् मन और इन्द्रियों को दबाने से कामोन्माद तथा दीर्घकालीन **रोग** (राजयक्ष्मा, मृगी, अपस्मार, पक्षाघात आदि) तथा **आतंक** (मस्तकपीड़ा, उदरशूल आदि) होने की संभावना रहती है। **धर्मभ्रंश**–इन पूर्व अवस्थाओं से जो नहीं बच पाता, वह चारित्रमोहनीय के क्लिष्ट कर्मोदय से धर्मभ्रष्ट भी हो जाता है।[1]

द्वितीय ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान

नो इत्थीणं कहं कहेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीणं कहं कहेज्जा।।2।।

[4] जो स्त्रियों की कथा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं–जो साधु स्त्रियों सम्बन्धी कथा करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का नाश होता है, अथवा उन्माद पैदा होता है, या दीर्घकालिक योग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ स्त्री सम्बन्धी कथा न करे।

विवेचन–नो इत्थीणः दो व्याख्या–बृहद्वृत्तिकार ने इसकी दो प्रकार की व्याख्या की है–(1) केवल स्त्रियों के बीच में कथा (उपदेश) न करे और (2) स्त्रियों की जाति, रूप, कुल, वेष, शृंगार आदि से सम्बन्धित कथा न करे। जैसे–**जाति**–यह ब्राह्मणी है, वह वेश्या है; **कुल**–उग्रकुल की ऐसी होती है, अमुक कुल की वैसी, **रूप**–कर्णाटकी विलासप्रिय होती है इत्यादि, **संस्थान**–स्त्रियों के डीलडौल, आकृति, ऊँचाई आदि की चर्चा, **नेपथ्य**–स्त्रियों के विभिन्न वेश, पोशाक, पहनावे आदि की चर्चा। इसका परिणाम पूर्ववत् है।[1]

तृतीय ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान

नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जा-गयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि-पन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा।।3।।

[5] जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] आचार्य कहते हैं- जो ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठता है, उसको ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है या दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है; अथवा वह केवलिप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैंठे।

विवेचन–इत्थीहिं सद्धिं सन्निसिज्जागएः व्याख्या–इसकी व्याख्या बृहद्वृत्ति में दो प्रकार से की गई है- (1) स्त्रियों के साथ सन्निषद्या–पट्टा, चौकी, शय्या, बिछौना, आसन आदि पर न बैठे, (2) स्त्री जिस स्थान पर बैठी हो उस स्थान पर तुरंत न बैठे, उठने पर भी एक मुहूर्त्त (दो घड़ी) तक उस स्थान या आसनादि पर न बैठे।[2]

चतुर्थ ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान

नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोयमाणस्स निज्झायमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि-पन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 424

1. (क) बृहद्वृत्ति, पत्र 424 (ख) मिलाइए–दशवै॰ 8/52, स्थानांग 9/663, समवायांग, 9
2. बृहद्वृत्ति, पत्र 424

खलु नो निग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा निज्झाएज्जा।।4।।

[6] जो स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को (ताक-ताक कर) नहीं देखता, उनके विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ श्रमण है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] इस पर आचार्य कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को (ताक-ताक कर या दृष्टि गड़ाकर) देखता है और उनके विषय में चिन्तन करता है, उसके ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है या वह केवलि-प्ररूपति धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को न देखे और न ही उनका चिंतन करे।

विवेचन–मनोहर और मनोरम में अंतर–मनोहर का अर्थ है–चित्ताकर्षक और मनोरम का अर्थ है–चित्ताह्लादक।

आलोइत्ता निज्झाइत्ता–'आलोकन' का यहाँ भावार्थ है–दृष्टि गड़ा कर बार-बार देखना। **निर्ध्यान** अर्थात् देखने के बाद अतिशयरूप से चिंतन करना, जैसे–अहो! इसके नेत्र कितने सुन्दर हैं। अथवा आलोकन का अर्थ है-थोड़ा देखना, निर्ध्यान का अर्थ है–जम कर व्यवस्थित रूप से देखना।[1]

इंदियाइं–यहाँ उपलक्षण से सभी अंगोपांगों का, अंगसौष्ठव आदि का ग्रहण कर लेना चाहिए।

पंचम ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

नो इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा, भित्तिअंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा, दूसंतरंसि वा भित्तिअंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीणं कुड्डंतरंसि

1. (क) बृहद्वृत्ति, पत्र 425 (ख) मिलाइए–दशवैकालिक 8/57 : 'चित्तभित्ति' न निज्झाए।'

वा दूसंतरंसि वा भित्तिअंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणमाणे विहरेज्जा।।5।।

[7] जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, कपड़े के पर्दे के अन्तर से, अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजितशब्द को, रुदितशब्द को, गीत की ध्वनि को, हास्यशब्द को, स्तनित (गर्जन-से) शब्द को, आक्रन्दन अथवा विलाप के शब्द को नहीं सुनता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यो?

[उ.] ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, पर्दे के अन्तर से, अथवा पक्की दीवार के अन्तर, से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन अथवा विलाप के शब्दों को सुनता है, उस ब्रह्मचारी निग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, या वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, पर्दे के अन्तर से, अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्द को न सुने।

विवेचन–कुड्य और भित्ति के अर्थों में अन्तर–शब्दकोष के अनुसार इन दोनों का अर्थ एक है, किन्तु बृहद्वृत्ति के अनुसार कुड्य का अर्थ मिट्टी से बनी हुई भींत, सुखबोधा के अनुसार पत्थरों की दीवारों और चूर्णि के अनुसार पक्की ईंटों से बनी भींत है। शान्त्याचार्य और आ. नेमिचन्द्र ने भित्ति का अर्थ पक्की ईंटों से बनी भींत और चूर्णिकार ने केतुक आदि किया है।

कुड्या (भींत) के ९ प्रकार–अंगविज्जा-भूमिका में कुड्य के 9 प्रकार वर्णित हैं–(1) लीपी हुई भींत, (2) विना लीपी, (3) वस्त्र की भींत, पर्दा (4) लकड़ी के तख्तों से बनी हुई, (5) अगल-बगल में लकड़ी के तख्तों से बनी, (6) घिसकर चिकनी बनाई हुई, (7) चित्रयुक्त दीवार, (8) चटाई से बनी हुई दीवार तथा (9) फूस से बनी हुई आदि।[1]

1. (क) बृहद्वृत्ति, पत्र 425 (ख) सुखबोधा, पत्र 221
(ग) चूर्णि, पृ. 242 (घ) अंगविज्जा-भूमिका, पृ. 58-59

कूजनादि शब्दों के अर्थ–कूजित–रतिक्रीडा शब्द, **रुदित**–रतिकलहादिकृत शब्द, **हसित**–ठहाका मार का हँसने का, कहकहे लगाने का शब्द, **स्तनित**–अधोवायुनिसर्ग आदि का शब्द, क्रन्दित–वियोगिनी का आक्रन्दन।[1]

छठा ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा।।6।।

[8] जो साधु (संयमग्रहण से) पूर्व (गृहस्थावस्था में स्त्री आदि के साथ किये गए) रमण का और पूर्व (गृहवास में स्त्री आदि के साथ की गई) क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं- जो पूर्व (गृहवास में की गई) रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, या वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ (संयमग्रहण से) पूर्व (गृहवास में) की (गई) रति और अनुस्मरण न करे।

विवेचन–छठे ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान का आशय–साधु अपनी पूर्वावस्था में चाहे भोगी, विलासी, या कामी रहा हो, किन्तु साधुजीवन स्वीकार करने के बाद उसे पिछली उन कामुकता की बातों का तनिक भी स्मरण या चिन्तन नहीं करना चाहिए। अन्यथा ब्रह्मचर्य की जड़ें हिल जाएँगी और धीरे-धीरे वह पूर्वोक्त संकटों से घिरकर सर्वथा भ्रष्ट हो जाएगा।

सातवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा।।7।।

[1] जो प्रणीत–रसयुक्त पौष्टिक आहार नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] इस पर आचार्य कहते हैं- जो रसयुक्त पौष्टिक भोजन-पान करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा उसके ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है, अथवा वह केवलिप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ प्रणीत–सरस एवं पौष्टिक आहार न करे।

विवेचन–पणीयं–प्रणीत : दो अर्थ–(1) जिस खाद्यपदार्थ से तेल, घी आदि की बूंदें टपक रही हों, वह, अथवा (2) जो धातुवृद्धिकारक हो।[1]

आठवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

नो अइमायाए पाणभोयणं आहारित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा।।8।।

[10] जो अतिमात्र में (परिणाम से अधिक) पान-भोजन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] उत्तर में आचार्य कहते हैं- जो परिमाण से अधिक खाता-पीता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न होती है, या ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है,

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 425

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 425

अथवा वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ मात्रा से अधिक पान-भोजन का सेवन न करें है।

विवेचन–अइमायाए : व्याख्या–मात्रा का अर्थ है–परिमाण। भोजन का जो परिमाण है, उसका उल्लंघन करना अतिमात्रा है। प्राचीन परम्परानुसार पुरुष (साधु) के भोजन का परिमाण है–बत्तीस कौर और स्त्री (साध्वी) के भोजन का परिमाण अट्ठाईस कौर है, इससे अधिक भोजन-पान का सेवन करना अतिमात्रा में भोजन-पान है।[1]

नौवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

नो विभूसाणुवादी हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसिय-सरीरे इत्थि-जणस्स अभिलसणिज्जे हवइ। तओ णं तस्स इत्थि-जणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे विभूसाणुवादी हवेज्जा।।9।।

[11] जो विभूषा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] इस प्रकार पूछने पर आचार्य कहते हैं- जिसकी मनोवृत्ति विभूषा करने की होती है, जो शरीर को विभूषित (सुसज्जित) किये रहता है, वह स्त्रियों की अभिलाषा का पात्र बन जाता है। इसके पश्चात् स्त्रियों द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है, अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, अथवा उसे उन्माद पैदा हो जाता है, या उसे दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ विभूषानुपाती न बने।

विवेचन–विभूसाणुवाई–शरीर को स्नान करके सुसंस्कृत करना, तेल-फुलेल लगाना, सुन्दर वस्त्रादि उपकरणों से सुसज्जित करना, केशप्रसाधन करना आदि विभूषा है। इस प्रकार से शरीर-संस्कारकर्ता-शरीर को सजाने वाला-विभूषानुपाती है।

1. **'बत्तीस किर कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ।**
   पुरिसस्स, महिलियाए अट्ठावीसं भवे कवला॥'' - बृहद्वृत्ति, पत्र 426

विभूसावत्तिए : अर्थ - जिसका स्वभाव विभूषा करने का है, वह विभूषावृत्तिक है।

विभूसियसरीरे - स्थान, अंजन, तेल-फुलेल आदि से शरीर को जो विभूषित-सुसज्जित करता है, वह विभूषितशरीर है।

इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे–विभूषा करने वाला साधु स्त्रीजनों द्वारा अभिलाषणीय हो जाता है, स्त्रियाँ उसे चाहने लगती हैं, स्त्रियों द्वारा चाहे जाने या प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है, जैसे–जब स्त्रियाँ इस प्रकार मुझे चाहती हैं, तो क्यों न मैं इनका उपभोग कर लूं? अथवा इसका उत्कट परिणाम नरकगमन है, अतः क्या उपभोग न करूँ? ऐसी शंका तथा अधिाक चाहने पर स्त्रीसेवन की आकांक्षा, अथवा बार-बार मन में ऐसे विचारों का भूचाल मच जाने से स्त्रीसेवन की प्रबल इच्छा हो जाती है और वह ब्रह्मचर्य भंग कर देता है।[1]

दसवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

नो सद्द-रूव-रस-गंध-फासाणुवादी हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु सद्द-रूव-रस- गंध-फासाणुवाइस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो सद्द-रूव-रस- गंध-फासाणुवादी हवेज्जा से निग्गंथे। दसमे बंभचेरसमाहिठाणे हवइ। भवंति य इत्थ सिलोगा। तं जहा-

[12] जो साधक शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रन्थ है।

[प्र.] ऐसा क्यों?

[उ.] उत्तर में आचार्य कहते है- शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त होने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, अथवा उसे उन्माद पैदा हो जाता है या फिर दीर्घकालिक रोग या आतंक हो जाता है, अथवा वह केवलिभाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ शब्द, रूप, रस, गन्ध

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 427

और स्पर्श में अनुपाती (–आसक्त) न बने। यह ब्रह्मचर्यसमाधि का दसवाँ स्थान है।

इस विषय में यहाँ कुछ श्लोक हैं, जैसे–

विवचेन–सद्द-रूव-रस-गंध-फासाणुवाई : स्त्रियों के शब्द, रूप, गंध और स्पर्श का अनुपाती–मनोज्ञ शब्दादि को देखकर पतित होने वाला या फिसल जाने वाला या उनमें आसक्त। जैसे कि–**शब्द**–स्त्रियों के कोमल ललित शब्द या गीत, **रूप**–उनके कटाक्ष, वक्षस्थल, कमर आदि का या उनके चित्रों का अवलोकन, **रस**–मधुरादि रसों द्वारा अभिवृद्धि पाने वाला, **गन्ध**–कामवर्द्धक सुगन्धित पदार्थ एवं **स्पर्श**–आसक्तिजनक कोमल कमल आदि का स्पर्श, इनमें लुभा जाने (आसक्त हो जाने) वाला।[1]

पूर्वोक्त दस समाधिस्थानों का पद्यरूप में विवरण

जं विवित्त-मणाइण्णं, रहियं इत्थि-जणेण य।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए।।1।।

[1] निर्ग्रन्थ साधु ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे स्थान (आलय) में रहें, जो विविक्त (एकान्त) हो, अनाकीर्ण–(स्त्री आदि से अव्याप्त) हो और स्त्रीजन से रहित हो।

मण-पल्हाय-जणणिं, काम-राग-विवड्ढणिं।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए।।2।।

[2] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु मन में आह्लाद उत्पन्न करने वाली और कामराग बढ़ाने वाली स्त्रीकथा का त्याग करे।

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए।।3।।

[3] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु स्त्रियों के साथ संस्तव (संसर्ग या अतिपरिचय) और बार-बार वार्तालाप (संकथा) का सदैव त्याग करे।

अंग-पच्चंग-संठाणं, चारु-ल्लविय-पेहियं।
बंभचेर-रओ थीणं, चक्खुगेज्झं विवज्जए।।4।।

[4] ब्रह्मचर्यपरायण साधु नेत्रेन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, संस्थान (आकृति, डीलडौल या शरीर रचना), बोलने की सुन्दर छटा (या

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 427-428

मुद्रा) तथा कटाक्ष को देखने का परित्याग करे।

कूइयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय कंदियं।
बंभचेर-रओ थीणं, सोय-गेज्झं विवज्जए।।5।।

[5] ब्रह्मचर्य में रत साधु श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन और क्रन्दन न सुने।

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य।
बंभचेर-रओ थीणं, नाणुचिंते कयाइ वि।।6।।

[6] ब्रह्मचर्य-निष्ठ साधु दीक्षाग्रहण से पूर्व जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य, क्रीड़ा, रति, दर्प (कन्दर्प या मान) और साथ किए भोजन एवं बैठने का कदापि चिन्तन न करे।

पणीयं भत्त-पाणं तु, खिप्पं मय-विवड्ढणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए।।7।।

[7] ब्रह्मचर्य-रत भिक्षु शीघ्र ही कामवासना को बढ़ाने वाले प्रणीत भोजन-पान का सदैव त्याग करे।

धम्म-लद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं।
नाइ-मत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेर-रओ सया।।8।।

[8] ब्रह्मचर्य में लीन रहने वाला, चित्त-समाधि से सम्पन्न साधु संयमयात्रा (या जीवन-निर्वाह) के लिए उचित (शास्त्र-विहित) समय में धर्म (मुनिधर्म की मर्यादानुसार) उपलब्ध परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक भोजन न करे।

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीर-परिमंडणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए।।9।।

[9] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु विभूषा का त्याग करे, शृंगार के लिए शरीर का मण्डन (प्रसाधन) न करे।

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए।।10।।

(10) वह शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श- इन पांच प्रकार के कामगुणों का सदा त्याग करे।

विवेचन–विविक्त, अनाकीर्ण और रहित : तीनों का

अन्तर–विविक्त का अर्थ है–स्त्री आदि के निवास से रहित एकान्त, अनाकीर्ण का अर्थ है–उन-उन प्रयोजनों से आने वाली स्त्रियों आदि से अनाकुल-भरा न रहता हो ऐसा स्थान तथा रहित का अर्थ है–अकाल में व्याख्यान, वन्दन आदि के लिए आने वाली स्त्रियों से रहित-वर्जित।[1]

कामरागविवड्ढणी : अर्थ–कामराग–विषयासक्ति की वृद्धि करने वाली।

चक्खुगिज्झं॰ : तात्पर्य–चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के अंगादि को न देखे, न देखने का प्रयत्न करे। यद्यपि नेत्र होने पर रूप का ग्रहण अवश्यम्भावी है, तथापि यहाँ प्रयत्नपूर्वक-स्वेच्छा से देखने का परित्याग करना चाहिए, यह अर्थ अभीष्ट है। कहा भी है- चक्षु-पथ में आए रूप का न देखना तो अशक्य है, किन्तु बुद्धिमान साधक राग-द्वेषवश देखने का परित्याग करे।[2]

मयविवड्ढणं–मद का अर्थ यहाँ–कामोद्रेक-कामोत्तेजन है, उसको बढ़ाने वाला (मद-विवर्द्धन)।[3]

धम्मलद्धं : तीन रूप : तीन अर्थ (1) धर्म्यलब्ध-धर्म्य-धर्मयुक्त एषणीय, निर्दोष भिक्षा द्वारा गृहस्थों से उपलब्ध, न कि स्वयं निर्मित (2) धर्म–मुनिधर्म के कारण या धर्मलाभ के कारण लब्ध, न कि चमत्कारप्रदर्शन से प्राप्त और (3) **'धर्मलब्धुं'**–उत्तम दस धर्मो को निरतिचार रूप से प्राप्त करने के लिए प्राप्त।[4]

'मियं–मितं'–सामान्य अर्थ है–परिमित, परन्तु इसका विशेष अर्थ है–शास्त्रोक्त परिमाणयुक्त आहार। आगम में कहा है–पेट में छह भागों की कल्पना करे, उनमें से आधा–यानी तीन भाग साग-तरकारी सहित भोजन से भरे, दो भाग पानी से भरे और एक भाग वायुसंचार के लिए खाली रखे।[5]

'जत्तत्थं'–यात्रार्थ–संयमनिर्वाहार्थ, न कि शरीरबल बढ़ाने एवं रूप

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 428
2. बृहद्वृत्ति, पत्र 428 : असक्का रूवमद्दट्ठुं चक्खुगोयरमागयं।
   रागद्दोसे उ जे तत्थ, तं बुहो परिवज्जए।।
3. बृहद्वृत्ति, पत्र 428
4. बृहद्वृत्ति, पत्र 428-429
5. (क) उत्तरा प्रियदर्शिनीटीका, भा. 3 पृ. 73 (ख) बृहद्वृत्ति, पत्र 429

आदि से सम्पन्न बनने के लिए।

पणिहाणवं–चित की स्वस्थता से युक्त होकर भोजन करे, न कि रागद्वेष या क्रोधादि वश होकर।[1]

सरीरमंडणं–शरीरपरिमण्डन, अर्थात्–केशप्रसाधन आदि।

कामगुणे : व्याख्या–इच्छाकाम और मदनकाम रूप द्विविध काम के गुण, अर्थात्–उपकारक या साधन अथवा साधन रूप उपकरण।[2]

आत्मान्वेषक ब्रह्मचर्यनिष्ठ के लिए दस तालपुटविष-समान

आलओ थीजणाइन्नो, थीकहा य मणोरमा।
संथवो चेव नारीणं, तासिं इंदिय-दरिसणं।।11।।
कुइयं रुइयं गीयं, हास-भुत्तासियाणि य।
पणीयं भत्त-पाणं च, अइमायं पाण-भोयणं।।12।।
गत्तभूसणमिट्ठं च, कामभोगा य दुज्जया।
नरस्सऽत्त-गवेसिस्स, विसं तालउडं जहा।।13।।

[11-12-13] (1) स्त्रियों से आकीर्ण आलय (निवास स्थान), (2) मनोरम स्त्रीकथा, (3) नारियों का परिचय (संसर्ग), (4) उनकी इन्द्रियों का (रागभाव से) अवलोकन।। 11 ।।

(5) उनके कूजन, रोदन, गीत तथा हास्य (हंसी मजाक) को (दीवार आदि की ओट में छिपकर सुनना), (6) (पूर्वावस्था में) भुक्त भोग तथा सहावस्थान का स्मरण–(चिन्तन) करना, (7) प्रणीत पान-भोजन और (8) अतिमात्र में पान-भोजन।। 12 ।।

(9) स्त्रियों के लिए इष्ट शरीर की विभूषा करना और (10) दुर्जय काम-भोग; ये दस आत्मवेषक मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान हैं।। 13 ।।

विवेचन–फलितार्थ–प्रस्तुत तीन गाथाओं में ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान की उन्हीं नौ गुप्तियों के भंग को तालपुट विष के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

संस्तवः प्रासंगिक अर्थ–स्त्रियों का परिचय, एक ही आसन पर बैठने या साथ-साथ भोजनादि सेवन से होता है।

1. बृहद्वृत्ति, पत्र 429 यथार्थ-संयमनिर्वाहणार्थं, न तु रूपाद्यर्थम्।
   प्रणिधानवान्-चित्तस्वास्थ्योपेतो, न तु रागद्वेषवशगोभुंजीत।।
2. बृहद्वृत्ति, पत्र 429

काम और भोग–शास्त्रनुसार काम शब्द, शब्द एवं रूप का वाचक है और भोग शब्द है–रस, गन्ध और स्पर्श का वाचक।

विसं तालउंड जहा–तालपुट विष शीघ्रमारक होता है। उसे ओठ रखते ही, ताल या ताली बजाने जितने समय में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यसमाधि में बाधक ये पूर्वोक्त 10 बातें ब्रह्मचारी साधक के संयम की शीघ्र विघातक हैं।[1]

ब्रह्मचर्य-समाधिमान् के लिए कर्त्तव्यप्रेरणा

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए।
संका-ठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं।।14।।

[14] प्रणिधानवान् (स्वस्थ या स्थिर चित वाला) मुनि दुर्जय कामभोगों का सदैव परित्याग करे और (ब्रह्मचय के पूर्वोक्त) सभी शंकास्थानों (भयस्थलों) से दूर रहे।

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्म-सारही।
धम्मारामे रए दंते, बंभचेर-समाहिए।।15।।

[14] भिक्षु धृतिमान् (परीषह और उपसर्गों को सहने में सक्षम), धर्मरथ का सारथि, धर्म (श्रुत-चारित्र रूप धर्म) के उद्यान में रत, दान्त तथा ब्रह्मचर्य में सुसमाहित होकर धर्म के आराम (बाग) में विचरण करे।

विवेचन–संकट्ठाणाणि सव्वाणि–पूर्व गाथात्रय में उक्त दसों ही शंकास्थानों का परित्याग करे, यह ब्रह्मचर्यरत साधु-साध्वी के लिए भगवान की आज्ञारूप चेतावनी है। इस पर न चलने से आज्ञा-भंग अनवस्था मिथ्यात्व एवं विराधना के दोष की संभावना है।[2]

१५वीं गाथा का द्वितीय अर्थ– ब्रह्मचर्यसमाधि के लिए भिक्षु धृमिमान्, धर्मसारथि, धर्माराम में रत एवं दान्त होकर धर्म रूप उद्यान में ही विचरण करे। यह अर्थ भी संभव है, क्योंकि ये दोनों गाथाएँ ब्रह्मचर्यविशुद्धि के लिए है।[3]

धर्मसारथि–यहाँ भिक्षु को धर्मसारथि इसलिए बतलाया गया है कि वह स्वयं धर्म में स्थिर होकर दूसरों (गृहस्थों, श्रावक आदि) को भी धर्म में प्रवृत्त करता है, स्थिर भी करता है।[1]

ब्रह्मचर्य-महिमा

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं।।16।।

[16] देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ये सभी उसको नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता है।

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिण-देसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहाऽवरे।।17।।
-त्ति बेमि।।

[17] यह (ब्रह्मचर्य रूप) धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है। इस धर्म के द्वारा अनेक साधक सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में होंगे। – ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन–देव आदि शब्दों के अर्थ–देव–ज्योतिष्क और वैमानिक, **दानव**–भवनपति, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ये व्यन्तर विशेष हैं। उपलक्षण से अन्य व्यन्तरदेवों का भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

दुक्करं–कायर लोगों द्वारा कठिनता से आचरणीय।

ध्रुवादि : अर्थ–ध्रुव–प्रमाण से प्रतिष्ठित, **नित्य**–त्रिकालसम्भवी, **शाश्वत**–अनवरत रहने वाला।[2]

।। बंभचेरसमाहिठाणं सोलसमं अज्झयणं समत्तं।।16।।

-----●-----

थोकड़ा-कायस्थिति के लिये सांकेतिक तालिका

सांकेतिक शब्द	पूर्ण शब्द	सांकेतिक शब्द	पूर्ण शब्द
बेइ.	बेइन्द्रिय	पर्या.	पर्याप्त
तेइ.	तेइन्द्रिय	अपर्या.	अपर्याप्त
चउ.	चउरिन्द्रिय	सं.	संख्यात
पंचे.	पंचेन्द्रिय	असं.	असंख्यात
ति.	तिर्यञ्च	पल./पल्यो.	पल्योपम
मनु.	मनुष्य	सागरो.	सागरोपम
पृथ्वी	पृथ्वीकाय	सम्य.	सम्यक्त्व
अप.	अप्काय	चा.	चारित्र
तेउ.	तेउकाय	सामा.	सामायिक
वायु.	वायुकाय	छेदो.	छेदोपस्थापनीय
वन.	वनस्पतिकाय	यथा.	यथाख्यात
त्रस.	त्रसकाय	पुद्.परा.	पुद्गल परावर्तन
सू.	सूक्ष्म	अना.	अनाहारक
बा.	बादर	अ.मु.	अन्तर्मुहूर्त्त

१८. कायस्थिति का थोकड़ा

श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र के 18वें पद एवं श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र* के आधार से कायस्थिति का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

यहाँ काय का अर्थ पर्याय है। पर्याय सामान्य विशेष के भेद से दो प्रकार की है। जीव की जीवत्व रूप पर्याय सामान्य है और नैरयिक, तिर्यञ्च आदि रूप पर्याय विशेष पर्याय है। सामान्य अथवा विशेष पर्याय के रूप में जीव का निरन्तर होना कायस्थिति है।

इस थोकड़े में 22 पदों से कायस्थिति का वर्णन किया जाता है।

जीव गइंदिय काए, जोए वेए कसाय लेसा य।
सम्मत्त णाण दंसण, संजय उवओग आहारे।।
भासग परित्त पज्जत्त, सुहुम सण्णी भवत्थिचरिमे य।
एतेसिं तु पदाणं कायठिई होइ णायव्वा।।

1. जीव पद
2. गति पद
3. इन्द्रिय पद
4. काय पद
5. योग पद
6. वेद पद
7. कषाय पद
8. लेश्या पद
9. सम्यक्त्व पद
10. ज्ञान पद
11. दर्शन पद
12. संयत पद
13. उपयोग पद
14. आहार पद
15. भाषक पद
16. परित्त पद
17. पर्याप्त पद
18. सूक्ष्म पद
19. संज्ञी पद
20. भव्य पद (भव सिद्धिक)
21. अस्तिकाय पद
22. चरम पद।

* इस थोकड़े में जहाँ-जहाँ अन्तर का वर्णन है वह श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र से लिया गया है।

इस थोकड़ें में प्रयुक्त होने वाले काल के भेदों को अपेक्षा विशेष से इस प्रकार समझना।

1. अनंत काल (वनस्पति काल)	
काल की अपेक्षा	***क्षेत्र की अपेक्षा***
अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की	I. *अनंत लोक प्रमाण प्रतिसमय एक-एक आकाश प्रदेश निकालते हुए जितने काल में लोक प्रमाण अनंत आकाश खण्ड खाली हो उतने काल की।* II. *पुद्गल परावर्तन की अपेक्षा आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं उतने असंख्यात पुद्गल परावर्तन की।*
2. अनंत काल	
अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की	*ढ़ाई (2½) पुद्गल परावर्तन की।*
3. अनंत काल	
अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की	*देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन की।*
4. असंख्यात काल (पृथ्वी काल)	
असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की	*असंख्यात लोक प्रमाण अर्थात् प्रतिसमय एक-एक आकाश प्रदेश निकालते हुए जितने काल में लोक प्रमाण असंख्यात खण्ड खाली हो उतने काल की।*
5. असंख्यात काल (बादर काल)	
असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की	*अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश हो उतने समय प्रमाण की।*

1. जीव पद

जीव की कायस्थिति सर्वकाल की है।

2. गति पद

कायस्थिति-

बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
नैरयिक और देव	10 हजार वर्ष	33 सागरोपम
देवी	10 हजार वर्ष	55 पल्योपम
मनुष्य, मनुष्य स्त्री, तिर्यञ्च स्त्री	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक 3 पल्योपम
तिर्यञ्च	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
सिद्ध भगवान	सादि अपर्यवसित	
सिद्ध भगवान के सिवाय 7 अपर्याप्त-नैरयिक, देव, देवी, मनु., मनु. स्त्री, ति. व ति. स्त्री	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
पर्याप्त नैरयिक, पर्याप्त देव	अन्तर्मुहूर्त्त कम 10 हजार वर्ष	अन्तर्मुहूर्त्त कम 33 सागरोपम
पर्याप्त तिर्यञ्च, ति. स्त्री, मनुष्य, मनु. स्त्री	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त कम 3 पल्योपम
पर्याप्त देवी	अन्तर्मुहूर्त्त कम 10 हजार वर्ष	अन्तर्मुहूर्त्त कम 55 पल्योपम

अन्तर-

बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
सिद्ध भगवान	अन्तर नहीं होता	
नैर., देव, देवी, मनुष्य, मनु. स्त्री., ति. स्त्री= 6	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)

उपरोक्त 6 जीव+6 पर्याप्त, मनु., मनु. स्त्री, ति. स्त्री = 3 अपर्याप्त		
अपर्याप्त नैरयिक, देव, देवी	अ. मु. अधिक 10 हजार वर्ष	अनंतकाल (वनस्पति काल)
शेष तिर्यञ्च, पर्या. तिर्यञ्च, अपर्या. तिर्यञ्च	अन्तर्मुहूर्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी

3. इन्द्रिय पद

कायस्थिति-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सेन्द्रिय के दो प्रकार- I. अनादि अपर्यवसित, II. अनादि सपर्यवसित।		
एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
3 विकलेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात काल
पंचेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	1000 सागरोपम झाझेरी
अनिन्द्रिय	सादि अपर्यवसित	
अनिन्द्रिय के सिवाय 6 बोल के अपर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
पर्याप्त सेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
पर्याप्त एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात हजार वर्ष
पर्याप्त बेइन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात वर्ष
पर्याप्त तेइन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात दिन रात
पर्याप्त चतुरिन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात महीनों
पर्याप्त पंचेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम★

★ पर्याप्त पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट कायस्थिति यहाँ श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र के आधार से लिखी गई है। श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र में यह पृथक्त्व सौ सागरोपम झाझेरी प्रमाण बताई है।

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय में अन्तर नहीं होता है		
एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	2000 सागरोपम से संख्यात वर्ष अधिक
बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)

4. काया पद

कायस्थिति-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सकायिक के 2 प्रकार- I अनादि अपर्यवसित II अनादि सपर्यवसित।		
पृथ्वी, अप्., तेउ., वायु.	अन्तर्मुहूर्त	असंख्यात काल (पृथ्वी काल)
वनस्पति	अन्तर्मुहूर्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
त्रसकाय	अन्तर्मुहूर्त	2000 सागरो. से संख्यात वर्ष अधिक
अकायिक	सादि अपर्यवसित	
अकायिक के सिवाय 7 बोलों के अपर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
पर्याप्त सकायिक व पर्याप्त त्रसकाय	अन्तर्मुहूर्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
पर्याप्त पृ.,अप्.,वा., वन.	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात हजार वर्ष की
पर्याप्त तेउकाय	अन्तर्मुहूर्त	संख्यात दिन रात

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सकायिक और अकायिक में अन्तर नहीं होता।		
पृथ्वी., अप्., तेउ., वायु, और त्रस.	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
वनस्पति	अन्तर्मुहूर्त्त	असंख्यात काल (पृथ्वी काल)

सूक्ष्म के 7 बोल की कायस्थिति-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सूक्ष्म जीव, सू.पृथ्वी., सू.अप्., सू.तेउ., सू.वायु., सू.वन., सू.निगोद=7 बोल	अन्तर्मुहूर्त्त	असंख्यात काल (पृथ्वी काल)
सूक्ष्म के इन 7 बोलों के अपर्या. और पर्या.=14	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सूक्ष्म जीव	अन्तर्मुहूर्त्त	असंख्यात काल (बादर काल)
सूक्ष्म वन., सूक्ष्म निगोद	अन्तर्मुहूर्त्त	असंख्यात काल (पृथ्वी काल)
सू.पृ., सू.अ., सू.ते., सू.वा.	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)

दस बोल की कायस्थिति-

(बादर जीव, 5 बादर स्थावर, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पति, बादर निगोद, बादर त्रस = 9 बोल एवं निगोद)-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
बादर जीव व बादर वन.	अन्तर्मुहूर्त्त	असंख्यात काल (बादर काल)
बा.पृथ्वी, बा.अप्.,बा.तेउ., बा.वायु, प्रत्येक शरीर बा.वन, बा.निगोद=6 बोल	अन्तर्मुहूर्त्त	70 कोड़ा कोड़ी सागरोपम

निगोद जीव	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (ढ़ाई पुद्गल परावर्तन)
बादर त्रसकाय	अन्तर्मुहूर्त्त	2000 सागरो. से सं. वर्ष अधिक
उपर्युक्त 10 बोल के अपर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
बादर जीव व बादर त्रसकाय के पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
बा.पृ., बा.अप्., बा.वायु., बा.वन., प्रत्येक शरीर बा.वन. के पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	संख्यात हजार वर्ष
बा. तेउ. के पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	संख्यात दिन रात
निगोद व बा. निगोद के पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
बा. जीव, बा. वन., बा. निगोद, निगोद	अन्तर्मुहूर्त्त	असंख्यात काल (पृथ्वी काल) का।
बा.पृ., बा.अप्., बा.तेउ., बा.वायु., प्रत्येक शरीर बा.वन., बा. त्रस.	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल✶

✶ बादर जीव, बादर वनस्पतिकाय, निगोद, बादर निगोद, सूक्ष्म वनस्पतिकाय, सूक्ष्म निगोद- इन छः का अन्तर पृथ्वीकाल का। सूक्ष्म का अन्तर बादर काल का तथा शेष सभी का अन्तर वनस्पति काल का।

5. योग पद

कायस्थिति-

सयोगी के 2 प्रकार - 1. अनादि अपर्यवसित- जो कभी मोक्ष नहीं जायेगा, वह सदैव योग वाला है।
2. अनादि सपर्यवसित- जो कभी न कभी मोक्ष जाने वाला है, क्योंकि मोक्ष जाने पर योग का अभाव हो जाता है।

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
मनोयोगी और वचन योगी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
काय योगी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
अयोगी	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सयोगी व अयोगी	अन्तर नहीं होता।	
मनोयोगी, वचन योगी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
काय योगी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त★

6. वेद पद

कायस्थिति-

सवेदी के 3 प्रकार - 1. अनादि अपर्यवसित- जो कभी भी उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी नहीं करेगा। 2. अनादि सपर्यवसित- जो उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी करेगा। 3. सादि सपर्यवसित- जो उपशम श्रेणी कर अवेदक होता है और फिर उपशम श्रेणी से गिरकर सवेदक होता है।

★ अयोगी अवस्था के पूर्व तक काय योग निरन्तर बना रहता है तथापि यहाँ जो काय योग का अन्तर बताया गया है, वह काय योग की प्रधानता की वजह से है अर्थात् वचन योग अथवा मनोयोग की प्रवृत्ति के समय जब काय योग की प्रधानता नहीं रहती है, तब काय योग का अंतर घटित होता है।

कायस्थिति-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सादि सपर्यवसित सवेदी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अर्द्ध पुद्. परा.)
स्त्री वेद	एक समय	पाँच प्रकार की- 1. 110 पल्योपम से पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक-(दूसरे देव. की अपरिगृहीता देवी की अपेक्षा) 2. 100 पल्योपम से पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक-(पहले देव. की अपरिगृहीता देवी की अपेक्षा) 3. 18 पल्योपम से पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक-(दूसरे देव. की परिगृहीता देवी की अपेक्षा) 4. 14 पल्योपम से पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक-(पहले देव. की परिगृहीता देवी की अपेक्षा) 5. पृथक्त्व पल्योपम से पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक-(मनु. स्त्री और ति. स्त्री की अपेक्षा)।
पुरुष वेद	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
नपुंसक वेद	एक समय	अनंतकाल (वनस्पति काल)
अवेदी के 2 प्रकार-1. सादि अपर्यवसित 2. सादि सपर्यवसित		
सादि सपर्यवसित अवेदी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सवेदी अनादि अपर्यवसित, अनादि सपर्यवसित तथा अवेदी सादि अपर्यवसित	अन्तर नहीं होता।	
सवेदी सादि सपर्यवसित	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
स्त्री वेद	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
पुरुष वेद	एक समय	अनंतकाल (वनस्पति काल)
नपुंसक वेद	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
सादि सपर्यवसित अवेदी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अर्द्ध पुद्. परा.)

7. कषाय पद

कायस्थिति-

सकषायी के 3 प्रकार- 1. अनादि अपर्यवसित 2. अनादि सपर्यवसित 3. सादि सपर्यवसित।		
बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
सादि सपर्यवसित सकषायी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अर्द्ध पुद्. परा.)
क्रोध कषायी, मान कषायी, माया कषायी	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
लोभ कषायी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
अकषायी के दो प्रकार-1. सादि अपर्यवसित 2. सादि सपर्यवसित		
सादि सपर्यवसित अकषायी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त

अन्तर

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सकषायी अनादि अपर्यवसित, अनादि सपर्यवसित तथा अकषायी सादि अपर्यवसित	अन्तर नहीं होता।	
सादि सपर्यवसित सकषायी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
क्रोध कषायी, मान कषायी माया कषायी	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
लोभ कषायी	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
सादि सपर्यवसित अकषायी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अ. पु. परा.)

8. लेश्या पद

कायस्थिति-

सलेश्य जीव के 2 प्रकार-1. अनादि अपर्यवसित 2. अनादि सपर्यवसित।		
बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
कृष्ण लेश्या और शुक्ल लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	33 सागरो. से अन्तर्मुहूर्त्त अधिक
नील लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	10 सागरोपम से पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक
कापोत लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	3 सागरोपम से पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक
तेजो लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	2 सागरोपम से पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक
पद्म लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	10 सागरो. से अन्तर्मुहूर्त्त अधिक
अलेश्य	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सलेश्य और अलेश्य	अन्तर नहीं होता	
कृष्ण, नील, कापोत लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	33 सागरो. से अन्तर्मुहूर्त्त अधिक
तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)

9. सम्यक्त्व पद

कायस्थिति-

सम्यग्दृष्टि के 2 प्रकार-1. सादि अपर्यवसित 2. सादि सपर्यवसित।		
बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
सादि सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि एवं क्षयोपशम सम्यक्त्व	अन्तमुहूर्त	66 सागरोपम झाझेरी
सास्वादन सम्यक्त्व	एक समय	6 आवलिका
उपशम सम्यक्त्व	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
वेदक सम्य.(क्षायिक वेदक)	एक समय	एक समय
क्षायिक सम्यक्त्व	सादि अपर्यवसित	
मिथ्यादृष्टि के 3 प्रकार-1. अनादि अपर्यवसित 2. अनादि सपर्यवसित 3. सादि सपर्यवसित।		
सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि	अन्तर्मुहूर्त	अनंतकाल (दे. अ. पु. परा.)
सम्यग्मिथ्यादृष्टि	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सादि अपर्यवसित सम्यग्दृष्टि	अन्तर नहीं होता है।	
सादि सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अ. पु. परा.)
सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि	अन्तर्मुहूर्त्त	66 सागरोपम झाझेरी★
सम्यग्मिथ्यादृष्टि, उपशम सम्य., क्षयोपशम सम्यक्त्व	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अ. पु. परा.)
क्षायिक वेदक व क्षायिक सम्यक्त्व	अन्तर नहीं है।	
सास्वादन सम्यक्त्व▲	पल्यो. के असं. वें भाग	अनंतकाल (दे. अ. पु. परा.)

10. ज्ञान पद

कायस्थिति-

ज्ञानी के 2 प्रकार - 1. सादि अपर्यवसित 2. सादि सपर्यवसित।		
बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
सादि सपर्यवसित ज्ञानी एवं आभिनिबोधिक ज्ञानी व श्रुतज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त्त	66 सागरोपम झाझेरी

★ कार्मग्रंथिक मतानुसार मिथ्यादृष्टि का अन्तर एक सौ बत्तीस सागरोपम से कुछ अधिक माना गया है।

▲ सम्यक्त्व के भेदों का अन्तर श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र के मूल में नहीं है, पंच संग्रह गाथा 61 में सास्वादन सम्यक्त्व का अन्तर जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग बताया है। पंच संग्रह की मलयगिरि टीका के गुजराती अनुवाद में यह बात टिप्पण में उल्लिखित है कि सास्वादन सम्यक्त्व का अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त भी संभव है किन्तु वैसा बहुत कम होने से उसकी विवक्षा नहीं की गई है।

अवधिज्ञानी	एक समय	66 सागरोपम झाझेरी
मन:पर्ययज्ञानी	एक समय	देशोन करोड़ पूर्व
केवलज्ञानी	सादि अपर्यवसित	
अज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी के 3 प्रकार- 1. अनादि अपर्यवसित 2. अनादि सपर्यवसित 3. सादि सपर्यवसित।		
सादि सपर्यवसित अज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अ. पु. परा.)
विभंग ज्ञानी	एक समय	33 सागरोपम से देशोन करोड़ पूर्व अधिक

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सादि अपर्यवसित ज्ञानी और केवलज्ञानी	अन्तर नहीं होता।	
सादि सपर्यवसित ज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि ज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन)
अज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी- अनादि अपर्यवसित, अनादि सपर्यवसित	अन्तर नहीं होता।	
सादि सपर्यवसित- अज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त्त	66 सागरोपम झाझेरी
विभंग ज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)

11. दर्शन पद

कायस्थिति-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
चक्षुदर्शनी	अन्तर्मुहूर्त्त	1 हजार सागरोपम झाझेरी
अचक्षुदर्शनी के 2 प्रकार	I. अनादि अपर्यवसित, II. अनादि सपर्यवसित।	
अवधिदर्शनी	एक समय	132 सागरोपम झाझेरी
केवलदर्शनी	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
चक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
अचक्षुदर्शनी और केवलदर्शनी	अन्तर नहीं होता।	

12. संयत पद

कायस्थिति-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
संयत	एक समय	देशोन करोड़ पूर्व
संयतासंयत	अन्तर्मुहूर्त्त	देशोन करोड़ पूर्व
असंयत के तीन प्रकार- 1. अनादि अपर्य., 2. अनादि सपर्य., 3. सादि सपर्य.		
सादि सपर्यवसित असंयत	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अर्द्ध पुद्. परा.)
सामा.चा., छेदो.चा., यथा.चा.	एक समय	देशोन नौ वर्ष कम करोड़ पूर्व
परिहारविशुद्धि चारित्र	एक समय	देशोन 29 वर्ष कम करोड़ पूर्व
सूक्ष्मसंपराय चारित्र	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
नो संयत - नो असंयत - नो संयतासंयत	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
संयत, संयतासंयत और पाँच चारित्र	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन)
सादि सपर्यवसित असंयत	एक समय	देशोन करोड़ पूर्व
असंयत अनादि अपर्यवसित, अनादि सपर्यवसित तथा नो संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत	अन्तर नहीं होता।	

13. उपयोग पद

कायस्थिति व अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
साकार उपयोग (ज्ञान) वाले और अनाकार उपयोग (दर्शन) वाले	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
नोट-यह कायस्थिति व अन्तर छद्मस्थ के उपयोग की अपेक्षा समझना।		

14. आहारक पद

कायस्थिति -

आहारक के 2 प्रकार-1. छद्मस्थ आहारक 2. केवली आहारक		
बोल	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
छद्मस्थ आहारक	दो समय न्यून क्षुल्लक भव	असंख्यात काल (बादर काल)
केवली आहारक	अन्तर्मुहूर्त्त	देशोन करोड़ पूर्व
अनाहारक के 2 प्रकार- 1. छद्मस्थ अनाहारक 2. केवली अनाहारक।		

छद्मस्थ अनाहारक	एक समय	दो समय
केवली अनाहारक के 2 प्रकार-1. सिद्ध केवली अनाहारक 2. भवस्थ केवली अनाहारक।		
सिद्ध केवली अनाहारक	सादि अपर्यवसित	
भवस्थ केवली अनाहारक के 2 प्रकार-		
(क) सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक	अजघन्य अनुत्कृष्ट 3 समय	
(ख) अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त

अन्तर -

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
छद्मस्थ आहारक	एक समय	दो समय
छद्मस्थ अनाहारक	2 समय न्यून क्षुल्लक भव	असंख्यात काल (बादर काल)
केवली आहारक	अजघन्य अनुत्कृष्ट 3 समय	
सयोगी केवली अनाहारक	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त★
अयोगी केवली और सिद्ध	अन्तर नहीं होता।	

★ सामान्यत: सयोगी केवली को केवलि-समुद्घात के अन्तर्गत तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में अनाहारक माना गया है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण सयोगी काल तक केवली आहारक होते हैं। अयोगी बनने पर ही अनाहारक अवस्था आती है। ऐसी स्थिति में यहाँ बताया गया सयोगी केवली अनाहारक का अंतर घटित करने के लिये नय विशेष का आश्रय लेना अपेक्षित है। आगम वाक्य नयों की अपेक्षा कहे गये हैं।
श्रीमद् भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 10 के अनुसार 14वें गुणस्थान में वीर्य आत्मा को स्वीकार किया गया है। पंच संग्रह में वीर्य (करण वीर्य) को योग का पर्यायवाची माना गया हे। इस दृष्टि से 14वें गुणस्थान में योग माना जा सकता है। श्रीमद् भगवती सूत्र के 26वें शतक (सैंतालीस बोलों की बंधी) के अनुसार 14वें गुणस्थान के प्रथम समय में 'घण्टा लाला न्याय' से शुक्ल लेश्या को स्वीकार किया गया है। लेश्या

15. भाषक पद

कायस्थिति -

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
भाषक	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
अभाषक के 2 प्रकार- 1. सिद्ध अभाषक, 2. संसारी अभाषक		
1. सिद्ध अभाषक	सादि अपर्यवसित	
2. संसारी अभाषक	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
भाषक	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
संसारी अभाषक	एक समय	अन्तर्मुहूर्त्त
सिद्ध अभाषक	अन्तर नहीं होता।	

16. परीत पद

कायस्थिति -

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
परीत के 2 प्रकार- 1. संसार परीत, 2. काय परीत		
1. संसार परीत	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (दे. अर्द्ध पु. परा.)
2. काय परीत	अन्तर्मुहूर्त्त	असं. काल (पृथ्वी काल)

योगान्तर्गत द्रव्य है अत: पूर्वोक्त दोनों पाठों से 14वें गुणस्थान के प्रथम समय में किसी अपेक्षा से योग माना जा सकता है। 14वां गुणस्थान अनाहारक है तदनुसार 14वें गुणस्थान के प्रथम समय में जीव को सयोगी अनाहारक माना जा सकता है। ऐसा होने से केवलि-समुद्घात के छठे समय से लेकर 13वें गुणस्थान के अंतिम समय तक का अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण काल सयोगी अनाहारक के अन्तर रूप में घटित हो जाता है।

-तत्त्वं केवलिगम्यम्।

अपरीत के 2 प्रकार- संसार अपरीत और काय अपरीत। 1. संसार अपरीत के 2 प्रकार-I अनादि अपर्यवसित, II अनादि सपर्यवसित।		
2. काय अपरीत	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (ढ़ाई पुद्गल परावर्तन काल)★
नो परीत नो अपरीत	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
संसार परीत	अन्तर नहीं	
काय परीत	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (अढ़ाई पुद्गल परावर्तन काल)
संसार अपरीत	अन्तर नहीं	
काय अपरीत	अन्तर्मुहूर्त्त	असं. काल (पृथ्वी काल)
नो परीत नो अपरीत	अन्तर नहीं	

17. पर्याप्त पद

कायस्थिति -

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
अपर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
नो अपर्याप्त नो अपर्याप्त	सादि अपर्यवसित	

★ टिप्पण- काय अपरीत का अर्थ निगोद के जीवों से लिया जाता है। तद्नुसार काय अपरीत की कायस्थिति निगोद के समान ही अढ़ाई पुद्गल परावर्तन मानना योग्य लगता है। मूल पाठ में ''वणस्सई कालो'' यह पाठ लिपि दोष से होना संभव है।

-तत्त्वं केवलिगम्यम्।

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त
अपर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
नो पर्याप्त नो अपर्याप्त	अन्तर नहीं	

18. सूक्ष्म पद

कायस्थिति -

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सूक्ष्म	अन्तर्मुहूर्त्त	असं. काल (पृथ्वी काल)
बादर	अन्तर्मुहूर्त्त	असं. काल (बादर काल)
नो सूक्ष्म नो बादर	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सूक्ष्म	अन्तर्मुहूर्त्त	असं. काल (बादर काल)
बादर	अन्तर्मुहूर्त्त	असं. काल (पृथ्वी काल)
नो सूक्ष्म नो बादर	अन्तर नहीं	

19. संज्ञी पद

कायस्थिति -

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
संज्ञी	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
असंज्ञी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
नो संज्ञी नो असंज्ञी	सादि अपर्यवसित	

अन्तर-

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
संज्ञी	अन्तर्मुहूर्त्त	अनंतकाल (वनस्पति काल)
असंज्ञी	अन्तर्मुहूर्त्त	पृथक्त्व 100 सागरोपम झाझेरी
नो संज्ञी नो असंज्ञी	अंतर नहीं	

20. भव्य पद

कायस्थिति -

भव्य	अनादि सपर्यवसित
अभव्य	अनादि अपर्यवसित
नो भव्य तो अभव्य	सादि अपर्यवसित

अन्तर - तीनों का अंतर नहीं है।

21. अस्तिकाय पद

धर्मास्तिकाय आदि छः द्रव्य सदा सर्वदा मिलते हैं।

22. चरम पद

1. **चरम**- जो कभी न कभी अंतिम भव को प्राप्त करेगा।
2. **अचरम**- जिसका चरम भव नहीं होगा।

कायस्थिति -

चरम	अनादि सपर्यवसित
अचरम	अनादि अपर्यवसित (अभव्य की अपेक्षा) सादि अपर्यवसित (सिद्धों की अपेक्षा)

अन्तर- दोनों का अंतर नहीं होता है।

सेवं भंते! सेवं भंते!

2. गर्भ का थोकड़ा

श्रीमद् भगवती सूत्र शतक पहला उद्देशक सातवां के आधार से गर्भ का थोकड़ा चलता है, सो कहते हैं-

1. **भंते!** क्या महान् ऋद्धि, कांति, बल, यश, सुख और महानुभाव वाला देव अपना च्यवन काल (मृत्यु समय) नजदीक जानकार लज्जा के कारण, घृणा के कारण, परीषह (अरति आदि) के कारण थोड़े समय तक आहार नहीं लेता, फिर पीछे क्षुधा (भूख) सहन नहीं होने से आहार करता है, शेष आयु पूरी होने पर मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है?

   हाँ गौतम! देवता अपना च्यवन काल नजदीक जानकर चिन्ता करता है कि अब मुझे इन देव संबंधी काम भोगों को छोड़कर मनुष्यादि की अशुचि पदार्थ वाली योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा और वहाँ वीर्य और रूधिर का आहार लेना पड़ेगा। ऐसा सोचकर वह लज्जा के कारण यावत् मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है।

2. **भंते!** गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रिय सहित उत्पन्न होता है या इन्द्रिय रहित उत्पन्न होता है?

   गौतम! द्रव्येन्द्रियों (कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श) की अपेक्षा इन्द्रिय रहित उत्पन्न होता है क्योंकि द्रव्येन्द्रियाँ शरीर से संबंध रखती है और भावेन्द्रियों की अपेक्षा वह इन्द्रियों सहित उत्पन्न होता है।

3. **भंते!** गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या सशरीरी (शरीर सहित) उत्पन्न होता है या अशरीरी (शरीर रहित) उत्पन्न होता है।

   गौतम! औदारिक, वैक्रिय, आहारक इन तीन शरीरों की अपेक्षा शरीर रहित उत्पन्न होता है क्योंकि ये तीनों शरीर जीव के उत्पन्न होने के बाद उत्पन्न होते हैं। तैजस शरीर और कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीर सहित उत्पन्न होता है क्योंकि ये दोनों शरीर परभव में जीव के साथ रहते हैं, इनका जीव के साथ अनादि संबंध है।

4. **भंते!** गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव सर्वप्रथम क्या आहार लेता है?

   गौतम! सर्वप्रथम माता के रज और पिता के वीर्य का मिश्रित आहार लेता है। फिर माता जैसा आहार करती है उसका एक देश (भाग, अंश) आहार गर्भ में रहा हुआ जीव भी करता है, क्योंकि माता की नाड़ी का गर्भस्थ जीव की नाड़ी से संबंध है।

5. **भंते!** क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मल-मूत्र, श्लेष्म (बलगम), नाक का मैल, वमन और पित्त होते हैं?

   गौतम! गर्भ में रहे हुए जीव के मल-मूत्र, श्लेष्म, नाक का मैल, वमन और पित्त नहीं होते हैं क्योंकि गर्भस्थ जीव जो आहार करता है वह श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय रूप में तथा हाड, मज्जा (हाड की मींजी), केश, नख रूप में परिणमाता है।

   भंते! क्या गर्भस्थ जीव मुख से कवलाहार कर सकता है?

   गौतम! गर्भस्थ जीव मुख से कवलाहार नहीं कर सकता, वह सर्व आत्म प्रदेशों से आहार करता है, सर्व आत्म प्रदेशों से परिणमाता है, सर्व आत्म-प्रदेशों से उच्छ्वास लेता है नि:श्वास छोड़ता है यावत् कदाचित् उच्छ्वास लेता है नि:श्वास छोड़ता है।

6. **भंते!** जीव के माता के कितने अंग हैं और पिता के कितने अंग हैं?

   गौतम! 1. मांस, 2. रूधिर (लोही) और 3. मस्तक का भेजा-ये तीन अंग माता के हैं और 1. हाड, 2. मज्जा (हाड की मींजी) और 3. केश, दाढ़ी, रोम, नख-ये तीन अंग पिता के हैं।

7. **भंते!** माता-पिता के अंग संतान के शरीर में कितने काल तक रहते हैं?

   गौतम! जब तक जीव का भवधारणीय शरीर रहता है तब तक माता-पिता के अंग रहते हैं, परंतु प्रतिसमय वे क्षीण होते जाते हैं यावत् आयुष्य समाप्त होने तक उनका कुछ न कुछ अंश रहता ही है। इसलिए इस पर माता-पिता का बहुत बड़ा उपकार है, इसी से यह जीवित है, इसलिए माता-पिता के उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए।

8. **भंते!** गर्भ में मरा हुआ जीव क्या नैरयिकों में उत्पन्न हो सकता है?

   हाँ गौतम! कोई जीव नैरयिकों में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता।

9. **भंते!** गर्भ में मरा हुआ जीव किस कारण से नैरयिकों में उत्पन्न होता

है?

गौतम! गर्भ में मरा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय पूर्ण पर्याप्ति वाला वीर्यलब्धि वैक्रियलब्धि वाला जीव किसी समय चढ़ाई कर आये हुए शत्रु सेना के विषय में सुनकर वैक्रिय लब्धि से अपने आत्म-प्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है और वैक्रिय समुद्घात करके चतुरंगिणी सेना तैयार करके शत्रु से संग्राम करता है। संग्राम करता हुआ वह जीव आयुष्य पूर्ण कर काल करे तो मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है, क्योंकि उस समय वह जीव राज्य, धन, कामभोगादि का अभिलाषी होता है। अत: मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

10. **भंते!** क्या गर्भ में रहा हुआ जीव देवों में उत्पन्न हो सकता है?

हाँ गौतम! कोई जीव देवों में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता।

11. **भंते!** गर्भ में रहा हुआ जीव मरकर किस कारण से देवों में उत्पन्न होता है?

गौतम! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय पूर्ण पर्याप्ति वाला जीव तथारूप श्रमणमाहन के पास एक भी आर्य वचन (धर्म वचन) सुनकर परम संवेग की श्रद्धा और धर्म पर तीव्र प्रेम होने से धर्म, पुण्य, स्वर्ग, मोक्ष का अभिलाषी, शुद्ध चित्त, मन, लेश्या अध्यवसाय में काल करे तो वह गर्भस्थ जीव मरकर स्वर्ग में उत्पन्न होता है।

12. **भंते!** गर्भ में जीव क्या समचित्त रहता है या पसवाड़े से रहता है या आम्र कुब्ज (मुड़ा हुआ आम) रहता है या खड़े रहता है या बैठता है या सोता है तथा जब माता सोती है तो गर्भ का जीव भी सोता है जब माता जागती है तो गर्भ का जीव भी जागता है। माता सुखी रहे तो गर्भ का जीव भी सुखी रहता है और माता दु:खी रहे तो गर्भ का जीव भी दु:खी रहता है?

हाँ गौतम! जीव गर्भ में समचित्त रहता है यावत् गर्भ का जीव भी दु:खी रहता है। प्रसव के समय मस्तक से या पैरों से गर्भ बाहर आता है तो वह सुखपूर्वक आता है। यदि प्रसव के समय योनि द्वार पर टेढ़ा होकर आता है तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। गर्भ से बाहर निकले हुए जीव के कदाचित् अशुभ कर्म का उदय हो तो दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दु:रस, दु:स्पर्श वाला और अनिष्ट, अकान्त, अमनोज्ञ, हीनस्वर, दीनस्वर,

यावत् अनादेय वचन वाला और महान् दु:ख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। जिस जीव के शुभ कर्म का उदय हो तो वह इष्ट, प्रिय, वल्लभसुस्वर वाला यावत् आदेय वचन वाला होता है और परमसुख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। इसलिए शास्त्रकार फरमाते हैं कि जीव को सुकृत करना चाहिए जिससे तीर्थंकर भगवान की आज्ञा का आराधन करके क्रमश: मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त करे फिर जन्म, जरा, मरण के दु:खों से व्याप्त इस संसार में आना ही न पड़े, जन्म लेना ही न पड़े और गर्भ के दु:खों को देखना ही न पड़े।

धर्म करो रे जीवड़ा, धर्म कियां सुख होय।
धर्म करंता जीवड़ा, दुखिया न दीठा कोय॥

श्री भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पाँचवें उद्देशक में कहा है-

13. **भंते!** गर्भ की स्थिति कितनी है?

गौतम! उदक (पानी) गर्भ की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट 6 मास की। तिर्यञ्चिणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट 8 वर्ष की। मनुष्यिणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट 12 वर्ष की।

भंते! काय भवस्थ (माता के उदर मे रहे अपने शरीर में स्थित जीव) की स्थिति कितनी है?

गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट 24 वर्ष की है।

14. **भंते!** वीर्य कितने काल तक योनि भूत रहता है?

गौतम! तिर्यञ्चिणी की योनि में प्रविष्ट हुआ तिर्यञ्च का वीर्य और मनुष्यिणी की योनि में प्रविष्ट हुआ पुरुष का वीर्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट 12 मुहूर्त तक योनि भूत रहता है फिर विनष्ट हो जाता है।

15. **भंते!** एक भव में एक जीव के कितने पिता हो सकते हैं?

गौतम! जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ पिता हो सकते हैं।

16. **भंते!** एक भव की अपेक्षा एक जीव (स्त्री) के कितने पुत्र-पुत्री हो सकते हैं?

गौतम! जघन्य 1-2-3, उत्कृष्ट पृथक्त्व लाख पुत्र-पुत्री हो सकते हैं।

17. **भंते!** मैथुन का कैसा पाप है?
गौतम! जैसे किसी भूंगली, नाल में रूई भरकर गर्म लोह की सलाई डाली जाये तो वह रूई जलकर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार मैथुन सेवन करने वाले को स्त्री की योनि में रहे हुए अनेक जीवों (पंचेन्द्रिय) की घात का पाप लगता है।

18. **भंते!** पुत्र-पुत्री कैसे उत्पन्न होते हैं (तंदुलवेयालियपइण्णा से)
गौतम! माता की दक्षिण (दाहिनी) कुक्षि में पुत्र उत्पन्न होता है और बांई कुक्षि में पुत्री उत्पन्न होती है, बीच में नपुंसक उत्पन्न होता है। ओज (रूधिर) अल्प और वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है। ओज (रूधिर) ज्यादा और वीर्य थोड़ा हो तो पुत्री उत्पन्न होती है। ओज (रूधिर) और वीर्य बराबर हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है। यदि स्त्री स्त्री का सेवन करे तो बिम्ब होता है।

-----●-----

कथा विभाग

1. आत्मबली और दृढ़धर्मी महासती श्री रंगूकंवरजी म.सा.

आध्यात्म विकास की भूमिका के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ नारी जगत भी आगे रहा है। प्रभु निर्वाण के बाद जब-जब श्रमण संस्कृति में शिथिलाचार एवं बाह्याडम्बर ने जोर जमाया तब-तब श्रमणों ने क्रियोद्धार करके उसको दूर हटाने की चेष्ठा की उसमें साध्वी समुदाय का भी बहुत योगदान रहा। उसी कड़ी में वैराग्य मूर्ति प्रथम प्रवर्तिनी श्री रंगूकंवर जी महासतीवर्या कठोर चारित्र वाली हुई। (प्रवर्तिनी का अर्थ है-साध्वियों को विभिन्न संयमी कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली)। व्यवहार में पदवी सम्मान की वस्तु मानी जा सकती है पर धार्मिक क्षेत्र में वह उत्तरदायित्व स्वरूप है। महासतीवर्या ने अपने कर्तव्य का नि:स्वार्थ भाव से पालन किया। वे स्वयं नि:स्पृह थी, उनमें आत्मकल्याण की ही भावना मुख्य थी।

परिचय:-

एक समय आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. क्रियोद्धार का सिंहनाद गुंजित करते हुए नीमच पधारे। उसी समय की एक घटना है, नीमच के हजारीमल पोरवाल छोटे साजनात परिवार की सुपुत्री रंगूजी जिनका ससुराल धम्मोत्तर गांव में था लेकिन कुछ समय बाद ही उनके ऊपर बाल वैधव्यता का पहाड़ टूट पड़ा, साथ ही कुछ समय पश्चात् पुत्र वियोग से दु:खित होकर उनके सास-ससुर भी चल बसे। अब तो केवल सब तरफ से नि:सहाय एकमात्र रंगूजी ही उस परिवार में रह गई, फिर भी उन्होंने अपनी अपूर्व धैर्यता का परिचय दिया। धर्माराधन में रमण करती हुई रंगूबाई जीवन-यापन करने लगी। उनकी शारीरिक रूप संपन्नता अनुपम थी साथ ही शुद्धशीलरत्न की आराधना से वह द्विगुणित चमक रही थी। न तृप्ति न तृष्टि, दीप की ज्योति को देखकर पतंगे जैसे मंडराने लगते हैं, उसी प्रकार वहां के ठाकुर शेरसिंह की दृष्टि रंगूजी पर पड़ गई। रंगूजी को देखते ही वह कामज्वर से पीड़ित हो उठा और अपनी वासना की पूर्ति के हथकंडे अपनाने लगा। कामी व्यक्ति को कभी भी इन्द्रिय सुख में तृप्ति नहीं मिलती।

ठाकुर का खाना-पीना, नींद सब हराम होने लगा। रात-दिन यही चिंतन

करता कि किस प्रकार उसको अपने चंगुल में फँसाऊं, आखिर सोचते-सोचते युक्ति निकाल ली। उसने सोचा पहली बात तो यहाँ इसका है कौन? और होगा भी तो मैं यहाँ का ठाकुर हूँ। मेरा सामना करने की ताकत किसमें है? जो टकरायेगा उसको मिट्टी में मिलाना मेरे बाएं हाथ का खेल है। बस फिर क्या था? सत्ता के मद में उन्मत्त होकर कुछ सिपाहियों को उसके घर के चारों ओर घेरा डालकर येन-केन प्रकारेण उसको अपने गढ़ में लाने का आदेश दे दिया।

असंयम से जीने की अपेक्षा संयम में मरना श्रेष्ठ है-

ठाकुर का आदेश पाकर सिपाहियों ने रंगूजी की हवेली को घेर लिया। उन दुष्टों की कार्यवाही का पता सती जी को लग गया। अहो! अवश्य आज मेरे शील पर संकट उपस्थित हो सकता है। उनका मानस कंपित हो उठा, वह विचार करने लगी। चाहे प्राण भी क्यों न चले जाऐं पर मैं अपना शील भ्रष्ट नहीं होने दूंगी। धारिणी, पद्मिनी आदि भी तो मेरे समान अबलाएं थीं, उन्हें कामलोलुपों ने कितना कष्ट दिया था। वे अपने धर्म से नहीं हटी, तो मैं कैसे हट जाऊंगी।

''सेयं ते मरणं भवेः'' व्रत को भंग करने की अपेक्षा मरण श्रेष्ठ है। अकार्य सेवन से व्रतों का भंग होता है, इसकी अपेक्षा व्रतों की रक्षा करता हुआ साधक यदि मरण को वरण कर लेता है तो वह आत्मघाती नहीं अपितु ''व्रत रक्षक वीर'' कहलाता है। अतः अपने प्राणों का उत्सर्ग करके भी शील की रक्षा का दृढ़ संकल्प धारण करके महासती रंगूजी ने पिछली खिड़की से कूदकर जंगल की शरण लेना ही श्रेयस्कर समझा। **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** कहते हैं जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता हैं

दृढ़संकल्पी की सदा जय होती है-

विचारों के दृढ़ होते ही रंगूजी एकदम खिड़की से कूद पड़ती हैं। कोई भय नहीं! कोई बाधा नहीं, कितनी साहसिन थीं वह? देवयोग से आपके पैर खिड़की से नीचे कूदने पर एक ऊँट पर पड़े और शरीर को किसी प्रकार की आंच न आई। पास ही खड़े ऊँट वाले ने तसल्ली दी ''बहन! डरो मत! मैं तुम्हें निर्विघ्नतया, तुम्हारे पीहर पहुँचा देता हूँ। उसकी बात को श्रवण कर पहले तो रंगूजी सहमी। फिर महामंत्र का स्मरण कर आत्मविश्वास के साथ ऊँट पर सवार हो गई। रंगूजी नवकार मंत्र जपती हुई वहां से रवाना हुई। कामान्ध ठाकुर की एक न चली और सतीजी नीमच पहुँच गई। घर का

दरवाजा आते ही ऊँट वाला ऐसा गायब हुआ कि पता ही नहीं चला कि किसने पहुँचाया है? घरवाले अकस्मात् रंगूजी को देखकर विचारमग्न हो गये। रंगूजी ने आप बीती सारी बात माता-पिता को सुनाई और नम्र निवेदन करने लगी कि अब मेरा मन संसार से उचट (ऊब) गया है। मैं संयमपथ पर आरूढ़ होना चाहती हूँ। इसी में मेरा उद्धार है। रंगूजी की सारी बात श्रवण कर माता-पिता ने इसी में सार समझा और सहर्ष संयम ग्रहण करने की अनुमति दे दी।

संयम की अनुमति मिलते ही रंगूजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। साथ ही जब यह सुना कि क्रियोद्धारक पूज्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. यहीं विराज रहे हैं तो उनकी खुशी का पार ही नहीं रहा। धन्य हूँ मैं जो मुझे ऐसे महापुरुष का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री का जीवन तपे हुए स्वर्ण की तरह दमक रहा था उन्होंने-

1. संयमीय साधना की गहराइयों में उतर कर आत्मकल्याण के लिए ज्ञान सम्मत विशिष्ट क्रिया का शंखनाद किया।
2. उन्होंने संयमीय क्रियाओं का विशिष्टता के साथ अनुपालन कर साधु समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया था।
3. भयंकर से भयंकर शीत ऋतु में भी एक ही चादर ओढ़कर आत्म साधना में तल्लीन रहते थे।
4. 21 वर्ष तक जिन्होंने बेले-बले तप की साधना की थी।
5. जिन्होंने 13 द्रव्यों से अधिक द्रव्य का, मिष्ठान्न एवं तली चीजों का यावत् जीवन परित्याग कर दिया था।
6. प्रतिदिन 2000 शक्रस्तव एवं 2000 गाथाओं का परावर्तन जिनके जीवन का अंग था।
7. जिनका जीवन अनेकानेक चमत्कारिक घटनाओं से संबद्ध था।

ऐसे थे ज्ञान सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परंपरा के आसन्न उपकारी आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा.।

रंगूजी पूज्यश्री की सेवा में पहुंची और सारी घटित घटना सुनाकर चरण शरण में लेने का विनम्र निवेदन करने लगी। ''अहा दुक्खाहु संसारा'' यह संसार तो दुःख रूप है। कषायों की अग्नि में जल रहा है। हे गुरुदेव! इस दुःख रूप संसार में धर्म ही शरण रूप है। आप मुझे शिक्षा-दीक्षा देने की कृपा करावें।

पूज्यश्री ने उनकी आंतरिक भावना को श्रवण करके फरमाया कि आपकी भावना श्रेष्ठ है। मेरे तो शिष्य-शिष्या बनाने का त्याग है। यदि आप इन निर्धारित मर्यादाओं का पालन कर सको तो स्वयं दीक्षित होकर कल्प पूरा (3 महासतियां) होने पर महासती श्री मगनकंवर जी म.सा. की नेश्राय में विचरण करना।

धन्य है आपका त्याग-

रंगूजी पूज्यश्री का हुक्म शिरोधार्य करके स्वयं दीक्षित हो गई और जब तक कल्प की पूर्ति नहीं होती तब तक के लिए आटा, आंवला, हल्दी, छाछ व धोवन-इन 5 द्रव्यों के उपरांत सब पदार्थों का त्याग कर दिया और पूर्ण सजगता से संयम का पालन करने में तन्मय बन गई। पूज्यश्री के वचनातिशय का ही कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों में नवलकुंवर बाई और रामपुरा निवासी सुंदरबाई दीक्षित होने के लिए तैयार हो गई। सुंदरबाई की विरक्त भावना को देखकर परिवार वालों ने उनके पांवों में बंधन डाल दिये। पूज्यश्री के मुखारविन्द से मंगलपाठ श्रवण करते ही बंधन तड़ातड़ टूट गए और दीक्षा की अनुमति प्राप्त हो गई।

रामपुरा में दोनों भव्यात्माओं की दीक्षाएं सानंद सम्पन्न हो गई। पू. रंगूजी ने विधि युक्त पुनः दीक्षा ग्रहण करके विहार कर मगनकंवर जी म.सा. की सेवा में पहुंच गई। तीनों महासतियां जी पहुंची ही नहीं उसके पहले ही उनकी कीर्ति पहुंच चुकी थी। जिसको श्रवण करके महासती श्री मगनकंवर जी म.सा. बहुत प्रभावित हुई और कहने लगी हे भाग्यवान्! मेरे पास सेवा में सतियां हैं ही तुम्हारे से जिनशासन की महान् अभिवृद्धि होगी इसलिए मेरी आज्ञा है आप भूतल पर खूब विचरण करके भव्यात्माओं का उद्धार करो। रंगूजी महासती के आशीर्वचनों को शिरोधार्य करके कुछ दिन सेवा में ठहरी, उसके पश्चात् धर्मआराधना करते हुए विचरण करने लगी।

आपके तपतेज का अतिशय प्रभाव पड़ा जिससे आपके पास में अनेक आत्माओं ने संयम पथ ग्रहण किया। आपने अपनी व्यवस्था का सारा उत्तरदायित्व वृद्धावस्था को देखकर अपने हाथों से महासती राजकंवर जी म.सा. को सौंपकर संवत् 1940 में स्वर्गवासी हो गई।

रंगूजी महासती के बाद भी आगे-आगे उत्तरदायित्व संभालने वाली सभी सतियां आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. एवं उनके बाद श्री शिवलालजी म.सा., पूज्य आचार्य श्री उदयसागर जी म.सा., पूज्य आचार्य श्री चौथमल जी

म.सा., पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म.सा., उसके बाद पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा., पूज्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. को ही अपना गुरु मानती थी। जयपुर में सभी सतियों ने पूज्य श्री शांत-क्रांति के दाता पू. श्री गणेशीलाल जी म.सा. को समर्पणा सौंपी। आचार्य श्री की नेश्राय ग्रहण की। उसी के अनुसार आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के समय एवं वर्तमान आचार्य परमपूज्य दृढ़संयमी श्री रामलाल जी म.सा. के समय भी सम्पूर्ण साध्वी समुदाय एक आचार्य श्री की निश्रा में ही समर्पित है।

उपसंहार-

आप श्री के जीवन में संयम की दृढ़ता, त्याग, तपस्या, शील, उदारता और सरलता आदि अनेक गुण विद्यमान थे। गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति थी। ऐसी आत्माएँ ही विश्व की अमूल्य संपत्ति होती है। सचमुच जैन समाज ऐसी महानिधि को पाकर धन्य-धन्य हो गया।

-----●-----

2. रोहिणेय चोर

परिचय-

राजगृह नगर में अनेक राजाओं द्वारा सेवित श्रेणिक राजा राज्य करता था। बुद्धिशाली एवं नीति में पराक्रमशाली उनका एक पुत्र था अभयकुमार। उन दिनों वैभारगिरि की गुफा में साक्षात् रौद्ररूप जैसे मूर्तिमान लोहखुर ने स्वार्थवश अपने पुत्र रोहिणेय से कहा- पुत्र! मेरी प्रतिष्ठा को तुम सदा बढ़ाते रहोगे। तुम अपने कर्म में मुझसे अधिक चतुर, कुशल और साहसी हो, किन्तु एक बात का ध्यान रखना तुम कभी महावीर के निकट मत जाना। उनकी वाणी मत सुनना, बस यह मेरी अंतिम सीख है। रोहिणेय ने संकल्प कर लिया। लोहखुर के मरने के बाद राजगृह में रोहिणेय का आतंक बहुत बढ़ गया था। रोहिणेय रूप परिवर्तन करने में बहुत निपुण था। राजपुरुष राजा श्रेणिक आदि ने भरसक प्रयत्न कर लिया रोहिणेय को पकड़ने का, लेकिन वह किसी भी तरह पकड़ में नहीं आता था।

एक दिन रोहिणेय चोर कानों में उंगलियाँ डाले हुए भगवान महावीर के समवसरण (धर्मसभा) के आगे से होकर जा रहा था, तभी अकस्मात् उसके पैर में कांटा चुभ गया। संत का वचन न सुनने का संकल्प था, परंतु कांटा

निकालने के लिए कानों में डाली हुई उंगलियां निकालनी पड़ी। इसी दौरान उसने भगवान महावीर के मुखारविन्द से 4 वचन सुने-1. देवों के पैर जमीन से अधर (ऊपर) रहते हैं। 2. उनके गले में पड़ी हुई फूलमालाएँ कुम्हलाती नहीं। 3. उनकी आँखों की पलकें नहीं झपकती और 4. उनके शरीर में पसीना नहीं आता। ये चार वचन सुनकर रोहिणेय वहाँ से सीधा अपनी गुफा में पहुँचा।

अभयकुमार द्वारा रचित मायाजाल-

इधर मंत्री अभयकुमार ने रोहिणेय चोर को पकड़ने का बीड़ा उठाया हुआ था। वे उसकी टोह में घूम रहे थे। एक जगह उन्हें रोहिणेय के होने का शक हुआ। किन्तु पूछने पर उसने अपने को व्यापारी बताया, उसने अपना नाम, पता, ठिकाना दूसरा ही बताया। अभयकुमार ने उससे मित्रता कर ली और उसे भोजन का न्यौता दिया। उसे खाने में कुछ मादक द्रव्य खिला दिये, जिससे वह बेहोश हो गया। उसे बेहोशी की हालत में वहाँ ले जाया गया जहाँ अभयकुमार ने पहले से ही स्वर्ग की रचना कर रखी थी। वहाँ देव एवं देवाँगनाओं का वेश धारण किये हुए कई युवक-युवतियाँ सुसज्जित खड़े थे। रोहिणेय को वहाँ एक पलंग पर सुला दिया। जब रोहिणेय होश में आया तो उसे जय, विजय से बधाया गया और कहा गया कि आप स्वर्ग में आये हैं। हम देव और देवाँगनाएँ आपकी सेवा में हाजिर हैं। स्वर्ग में आने वाले देव को सर्वप्रथम यह पूछा जाता है कि वह कौन है, कहाँ का है, उसने क्या-क्या सुकर्म-दुष्कर्म किये है? उत्तर देने से पूर्व वहां की परिस्थितियों को देखकर रोहिणेय ने सोचा-यह सचमुच देवलोक है या मुझे फंसाने के लिए अभयकुमार के द्वारा रचा मायाजाल है।

संतवाणी का अद्भूत प्रभाव-

इतने में उसे भगवान महावीर के सुने वचन याद आए-अहो! यह सब मायाजाल है। तभी दिव्यरूपधारियों ने फिर से कहा-आप अपने पूर्वजन्म के सुकृत कर्म को सुनाइए।

रोहिणेय बोला-मैंने पूर्वजन्म में सुपात्रदान दिया, तप किया, गुरुभक्ति की थी, और भी अनेक धर्म कार्य किये। देवों ने कहा-अच्छा! अब अपने दुष्कृत्यों का भी बयान कीजिए। रोहिणेय ने कहा-सतत् साधुसमागम होने से मैंने अपने जीवन में कोई गलत काम नहीं किया। आखिर में कोई अपराध साबित नहीं होने के कारण रोहिणेय को छोड़ दिया गया।

सत्संग से वंचित रहने का पश्चाताप-

अब रोहिणेय विचार करने लगा-अहो! पिताजी ने व्यर्थ ही चिरकाल तक मुझे भगवान के वचनामृतों से वंचित रखा। अगर प्रभु के वचन मेरे कानों में नहीं पड़ते तो मैं अब तक इनकी मार खाकर खत्म कर दिया गया होता। अनिच्छा से भी सुने हुए भगवद्वचनों ने आज मुझे बचा लिया। क्षणिक वचनों का भी इतना सुफल मिला। अगर मैं सारा उपदेश रूचिपूर्वक सुनता तो कितना लाभ मिलता। इस प्रकार शुभ चिंतन करता हुआ रोहिणेय सीधा अहिंसा का उद्घोष करने वाले भगवान महावीर के पास पहुँचा और उन्हें भावपूर्वक वंदन नमस्कार किया।

संसार की क्षणिकता का बोध-

प्रभु महावीर ने रोहिणेय तथा परिषद् को धर्म देशना दी। सांसारिक वैभव नाशवान् है। ये पदार्थ क्षणिक सुख एवं बहुत लंबे समय तक दु:ख देने वाले हैं। फलत: रोहिणेय को संसार से विरक्ति हो गई। उसने प्रभु महावीर के समक्ष सारे अपराध मंजूर कर शुद्ध सरल हृदय से पश्चातापपूर्वक आत्मालोचना की तथा श्रेणिक राजा से क्षमायाचना कर पर्वत, नदी, वन, वृक्ष, शमशान आदि जिन स्थानों पर धन गड़ा था, अभय कुमार को सौंप दिया। अभयकुमार ने भी जिन-जिन व्यक्तियों का धन था उन्हें दे दिया। निर्लोभी और नीतिमान मंत्रियों की और कोई दुर्नीति नहीं होती। 'चोर से बना चरित्रवान'-उसके बाद रोहिणेय ने सगे-संबंधियों को त्याग, वैराग्य और परमार्थ की बातें कहकर उन्हें प्रतिबोधित किया, फिर स्वयं भगवान के चरणों में पहुंचा। श्रेणिक राजा ने खूब धूमधाम से रोहिणेय का दीक्षा महोत्सव किया। प्रभु महावीर से दीक्षा अंगीकार कर कर्मक्षय के लिए विविध प्रकार की तपस्या स्वीकार की। अंतिम समय में संलेखना संथारा कर देवलोक में उत्पन्न हुआ। जिनवाणी श्रवण से निंदनीय व्यक्ति भी वंदनीय, पापी भी पावन एवं कुपथ से सुपथगामी बन जाता है। यह है-सत्संग का हृदयस्पर्शी प्रभाव और महत्व। साधुओं की संगति करनी चाहिए। संगति पूरे जीवन को प्रभावित करती है। वह उन्नति के द्वार खोल देती है।

One must be ever ready to act in accordance with the tenets of one's faith-सुने हुए धर्म को ग्रहण कर उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए।

-----●-----

3. वीर लोकाशाह

प्रभु महावीर के बाद भस्म ग्रह के प्रभाव से आर्य स्थूलि, आर्य सुहस्ति, आर्य महागिरी के शासनकाल तक तो विचारों में मतभेद होते हुए भी शासन व्यवस्था में एकता का रूप बना रहा लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे मान्यताएँ, क्रियाएँ, वस्त्र, आचार संहिता, गच्छ, चैत्य, मुखवस्त्रिका, रजोहरण, दंड, आहार, विहार आदि निमित्तों को लेकर भंयकर विग्रह का रूप बन गया। श्रमण वर्ग यंत्र-मंत्र-तंत्र, औषध, निमित्त, यशलिप्सा, धन संग्रह की वृत्ति में पड़कर निर्वद्य साधना के स्थान पर प्रतिमा निर्माण एवं पूजा विधि आदि का सावद्य उपदेश देने लग गये। निरवद्य साधना पर आवरण बना रहे, इस उद्देश्य से, साधु व यति के अलावा जैनागम कोई पढ़े ही नहीं इसलिए शास्त्र गुप्त भण्डारों में रख दिये गये। ''पढ़े सूत्र तो मरे पुत्र'' जैसी डराने वाली भ्रांति पैदा करने लगे। रास, चौपाई, जन्म कल्याणक आदि के माध्यम से जन समुदाय को आल्हादित करने लगे। जिससे स्वच्छंदता इतनी बढ़ गई कि जन साधारण में धर्म व धर्मगुरुओं के प्रति उदासीनता व्याप्त हो गई लेकिन किसी में भी विरोध करने की क्षमता ही पैदा नहीं हो रही थी। इंतजार था एक ऐसे क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का जो इस पर प्रहार करके शुद्ध साधुमार्ग का स्वरूप जन-जन तक पहुँचा सके।

जन्म व परिचय-

सूर्यास्त के समय आकाश में मोहक रंग छा जाते हैं और आकाश में ही विलीन हो जाते हैं। सागर में अनेक प्रकार की तरंगे उठती हुई दिखाई देती हैं और सागर में ही समा जाती हैं। उसी प्रकार इस विश्व में अनेक प्रकार के जीव जन्मते हैं, जीते हैं और काल के सागर में समा जाते हैं लेकिन कोई ऐसी विरल आत्मा दुनिया में आती है, जो अपने सत्कार्यों से अमर हो जाती है। वह शुभ समय भी आया जब दो हजार वर्ष के भस्म ग्रह का प्रभाव मंद पड़ा। संवत् 1472 कार्तिक सुदी पूर्णिमा की पवित्र रात्रि में अरहटवाड़ा के हेमाशाह मेहता की धर्मपत्नी गंगाबाई की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ। जिसका नाम लोकचंद्र रखा गया। ये कोई परिवार, कुटुम्ब या जाति के शाह बनकर नहीं आये थे परन्तु वे तो पूरे विश्व के जैन समाज के शाह बनकर आये थे। इस विश्व में कोई दानवीर, कोई त्यागवीर तो कोई

शूरवीर होते हैं। जिसमें लोकाशाह धर्मवीर बनकर आये थे। धीरे-धीरे आपके जीवन की यात्रा शुरू हुई। लोकाशाह का बचपन सुखपूर्वक व्यतीत हुआ। बचपन से ही आपकी अनेक घटनाओं ने जनमानस के हृदयपटल पर गहरी छाप छोड़ दी। यौवनावस्था में सिरोही के शाहजी की पुत्री सुदर्शना से विवाह सम्पन्न हुआ और 3 वर्ष बाद एक पुत्र हुआ जिसका नाम पूर्णचंद्र रखा। आपके पिता का व्यवसाय जवाहरात का था। युवावस्था में ही आपने पिता का व्यवसाय संभालकर निपुणता प्राप्त की। आपकी लेखनी बहुत सुन्दर व मोड़दार थी तथा आपकी स्मरणशक्ति भी बहुत तेज थी।

कोषाध्यक्ष की पदवी-

23 वर्ष की वय में पिता का व उसके एक वर्ष पश्चात् माता का वियोग हो गया। जिससे मन उचट गया और आप वहाँ से ''अहमदाबाद'' आकर जवाहरात का व्यवसाय करने लगे। उस समय अहमदाबाद की धरती पर मोहम्मद शाह का राज्य था। एक बार राज्यसभा में सूरत के जौहरी दो हीरे लेकर आये। हीरे के परीक्षण हेतु जौहरियों की सभा बुलाई गई। उनके साथ आप भी गये। सभी ने दोनों हीरों को खरा बताया, पर आपने एक ही हीरे को खरा बताया। आपने एक हीरे की कीमत सवा लाख और दूसरे की कौड़ी की भी नहीं बताई। परीक्षण से आप की बात खरी उतरीं जिससे बादशाह ने खुश होकर मान-सम्मान के साथ आपको कोषाध्यक्ष की पदवी सौंपी।

संसार से विरक्ति-

एक समय राजकाज की खटपट से बादशाह के पुत्र कुतुबशाह ने क्रोध के आवेग में आकर स्वयं के पिता की हत्या कर दी। सत्ता और पदवी एक ऐसी चीज है जिससे किसी के दिल में अहंकार जगता है तो किसी के दिल में ईर्ष्या। धन के पीछे पुत्र द्वारा ही स्वयं के पिता की हत्या कर दी गई। यह जानकर लोकाशाह खिन्न हो गये ''नष्टमोह स्मृति लब्ध्या'' संसार की निराशयता और स्वार्थमयता को निहारते ही आपके मन में संसार से विरक्ति पैदा हो गई, राजसभा में आना जाना बंद कर दिया तथा निवृत्तिपूर्ण जीवन जीने लगे। Simple Living and High Thinking अर्थात् ''सादा जीवन उच्च विचार'' श्रावक का विचार हमेशा ऊँचा यानि मात्र मोक्ष जाने का होता है।

सच्चे धर्म की पहचान-

संयोग से एक दिन ज्ञानजी यति गोचरी हेतु आये। आप कुछ लेखन कार्य कर रहे थे। ज्योंहि उनकी दृष्टि आपके अक्षरों पर पड़ी तो वे बहुत प्रभावित हुए, आपके अक्षरों से शास्त्रों के लेखन की सेवा मांगी और कहा कि आपको महान् श्रुत सेवा का लाभ मिलेगा। शाह ने अहो भाव से कहा! शासन सेवा का लाभ मुझे मिल रहा है, यह तो मेरा सौभाग्य है। यति जी ने सभी शास्त्रों के पत्रें दे दिए।

सर्वप्रथम उन्होंने दशवैकालिक सूत्र लिखना प्रारंभ किया, उसमें प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा पढ़ते ही चिन्तन मनन शुरू हुआ। आपके अन्तर्चक्षु खुल गये और आपने सोचा- कहाँ तो आगम की निरवद्य वाणी और कहाँ वर्तमान समाज में व्याप्त आडम्बर, अंधविश्वास और हिंसक प्रवृत्ति से तत्कालीन साधु समाज शिथिलाचारी और मूर्तियों की आड़ में परिग्रहधारी हो गया है। धर्म की यह विडम्बना देखकर लोकाशाह ने संकल्प किया कि मैं इस पाखण्ड को हटाकर शुद्ध जैनत्व का प्रचार करूँगा। फिर शाहजी ने सभी पत्नों की 2-2 प्रतिलिपियाँ लिखी। जिसमें से एक यतिजी के लिए व दूसरी स्वयं के लिए रखी। कुल 32 आगमों की प्रतिलिपी उतारने के बाद इस बात का रहस्योद्घाटन होते ही यतिजी ने लिखवाना बंद कर दिया।

क्रांतिकारी कदम-

समय पाकर लोकाशाह आगमों का गहरा अध्ययन करके शुद्ध साधुमार्गी धर्म का प्रचार करने लगे। जड़ पूजा को हटाकर आत्मा की ओर ध्यान आकर्षित किया। जिससे लाखों लोग शुद्ध साधुमार्ग का अनुसरण करने लगे। एक समय अणहिलपुर पाटण वाले श्रेष्ठिवर्य लखमशी भाई लोकाशाह के पास चर्चा करने आये, लखमशी भाई बोले-भईया! मैंने सुना है, आप कोई नया पंथ चला रहे हैं।

लोकाशाह-भाई साहब! न तो मैं कोई उपदेशक हूँ, न नया पंथ खड़ा करने की भावना है। हाँ, कालक्रम से सत्य के ऊपर आये हुए आवरण को हटाकर उसका प्रतिपादन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

लखमशी भाई-सुना है, आप मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं।

लोकाशाह-भाई साहब मेरी विरोध की कोई भावना नहीं है लेकिन जैनागमों के अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट है कि मूल आगमों में कहीं

भी तीर्थंकरों की प्रतिमा, पूजा का उल्लेख नहीं है और न ही इन कृत्रिम तीर्थों की यात्रा से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। आगम में तो साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार ही तीर्थ प्रतिपादित हैं।

अच्छा, अब आप ही बताएं मैं और मेरा चित्र या भारत या उसका नक्शा एक हो सकता है क्या?

लखमशी भाई-नहीं हो सकता है।

लोकाशाह-वैसे ही भगवान और कृत्रिम मूर्ति एक हो सकती है क्या? नहीं! तो आप ही चिंतन करें, जितने भी तीर्थंकर हो चुके हैं, वे वीतरागी, निरंजन, निराकार सिद्धावस्था में विराजमान हैं तो उनका आकार या मूर्ति कैसी? मूर्ति एक कला और पुरातत्व की एक रिद्धि हो सकती है पर धर्म में तो अहिंसा, संयम और तप की आराधना का ही महत्व है।

इस प्रकार जब परस्पर चर्चा चली तो लखमशी भाई जो आये तो समझाने थे पर स्वयं ही समझ गये। इसी तरह सिरोही के नागसी, अरहड़वाड़ा के दलीचंद जी, पाटण के मोतीचन्द जी, सूरत के शंभुजी-ये चारों ही संघपति भी अपने-अपने विशाल संघ के साथ तीर्थ यात्रा करते हुए अहमदाबाद आये और जब उन्होंने भी लोकाशाह का आगम सम्मत उपदेश श्रवण किया तो इतने प्रभावित हुए कि उनमें से एक साथ 45 व्यक्तियों ने आगमानुकूल संयम ग्रहण करने की तीव्र इच्छा प्रकट की तब लोकाशाह ने मुनि श्री ज्ञानजी स्वामी को निमंत्रण देकर 21 ठाणे से बुलाया और वि.सं. 1527 वैशाख शुक्ला 3 को महोत्सवपूर्वक दीक्षा दिलवाई। साथ ही लाखों चैत्यवासी लोकाशाह के अनुयायी बने। इस प्रकार संघ दिन दुना रात चौगुना प्रगतिशील होता गया।

उपसंहार-

आज भी लोग वीर लोकाशाह के उपकारों को याद करते हैं। हमारे भीतर भी यदि अंधश्रद्धा शिथिलाचार प्रवेश कर गये हों तो उसे दूर कर भगवान के द्वारा बताये गये सत्य मार्ग पर चलें।

॥ णमो आयरियाणं ॥

-----●-----

1. पालो दृढ़ आचार

(तर्ज :- वो दिन धन होसी)

पालो दृढ़ आचार, जैनों! सब मिलकर ॥ध्रुव॥
प्रातःकाल सदा उठ जावों, अपने निज स्थानक में आवो।
आलस दूर निवार ॥१॥ जैनों सब....
संतों को पंचांग नमाओ, देव धर्म को मन में ध्याओ।
जपो मन्त्र नवकार ॥२॥ जैनों सब....
सामायिक का लाभ उठाओ, प्रभु प्रार्थना विधि से गावो।
करो मधुर उच्चार ॥३॥ जैनों सब....
नित्य नियम चौदह चितारो, व्रत पच्चक्खाण नया कुछ धारो।
रोको आश्रव द्वार ॥४॥ जैनों सब....
करो मनोरथ त्रय का चिन्तन, अरू विश्राम चार का सुमिरन।
भावो भावना बार ॥५॥ जैनों सब....
सुनो सदा मुनियों का भाषण, पूछो प्रश्न करो हल धारण।
सीखो ज्ञान अपार ॥६॥ जैनों सब....
छाने बिना न पानी पीओ, अशुद्ध भोजन कभी न खाओ।
पालो नित चौविहार ॥७॥ जैनों सब....
अष्टम, पाक्षिक पौषध धारो, प्रतिक्रमण कर दोष निवारो।
प्रायश्चित लेओ धार ॥८॥ जैनों सब....

-----●-----

2. अमूल्य तत्त्व विचार

(तर्ज :- शुभ केली के आनन्द के....)

अति पुण्य का संचय किया, तब देह मानव का मिला।
तो भी अरे संसार बंधन का, न इक आंटा टला॥१॥
संसार सुख लेते हुए, सुख दूर होता जान लो।
क्षण-क्षण भयंकर भाव मरना, क्यों अरे बेभान हो॥२॥
लक्ष्मी तथा अधिकार बढ़ते, क्या बढ़ा यह तो कहो।
परिवार और कुटुम्ब का बढ़ता, न बढ़ता है अहो॥३॥
संसार की इस वृद्धि का है, अर्थ नर भव हारना।
आश्चर्य हा! पल मात्र भी, हमने न की सुविचारना॥४॥
चाहे जहाँ से लो भले, निर्दोष सुख और हर्ष को।
हो बंधनों से मुक्त आत्मा, प्राप्त हो उत्कर्ष को॥५॥
मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, रूप क्या मेरा सही।
किस हेतु यह संबंध है, रखूँ इसे अथवा नहीं॥६॥
यदि शांति और विवेक पूर्वक यह विचार कभी किया।
सिद्धांत आत्मज्ञान का तो, सार सारा पा लिया॥७॥
यह प्राप्त करने के लिए, किसके वचन प्रमाण हो।
मानो कथन उनका मनुज, सिद्धांत ज्ञान विधान हो॥८॥
रे आत्म तारो! आत्म तारो! सत्य इसको जान लो।
सर्वात्म में समदृष्टि हो, यह कथन दिल से जान लो॥९॥

-----●-----

1. साधक एक परिचय

साधक-

साधक अर्थात् साहसपूर्वक धर्म के कार्य को करने वाला, मोक्षरूपी, आत्मलक्ष्य को सिद्ध करने वाला, आत्म स्वरूप को प्रकट करने में शक्ति का प्रयोग करने वाला, वह साधक कहलाता है।

साधक के दो स्तर हैं- साधु और श्रावक।

साधु-

घरबार को छोड़कर सर्वथा निर्दोष रूप अहिंसादि महाव्रतों का पालन करते हैं और शांत-दांत बनकर निर्वाण साधना में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं।

श्रावक-

गृहस्थ जीवन की मर्यादा में रहकर अपनी शक्ति के अनुसार अणुव्रत आदि 12 व्रतों का पालन करते हैं। श्रावक वह है जो श्रद्धावान्, विवेकवान् तथा आत्मोन्नति कारक क्रियाएं करके अपना जीवन बिताते हैं।

साधु और श्रावक एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक-दूसरे के बिना दोनों अधूरे हैं, इनमें समानताओं के साथ कुछ असमानताएं भी हैं-

साधु व श्रावक में समानताएँ-

1. दोनों ही सम्यक् दृष्टि होते हैं।
2. दोनों को चार तीर्थों में एक तीर्थ माना जाता है।
3. दोनों ही ग्रहण किए गये महाव्रतों एवं अणुव्रतों में लगे हुए दोषों की शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करते हैं।
4. दोनों अपने-अपने व्रतों का पालन कर सद्गति को प्राप्त करते हैं।
5. श्रावक व साधु प्रतिक्रमण के काल में ही प्रतिक्रमण करते हैं। श्रावक व साधु देवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक में षट् आवश्यक रूप प्रतिक्रमण करते हैं तथा कायोत्सर्ग में देवसिक, रात्रिक में 4, पाक्षिक में 8, चातुर्मासिक में 12 तथा सांवत्सरिक में 20 लोगस्स का ध्यान करते हैं।
6. दोनों का लक्ष्य अंत समय में संलेखना संथारा करके मोक्ष प्राप्ति करने का होता है।

साधु व श्रावक में असमानताएँ-

	साधु/साध्वी	श्रावक/श्राविका
1.	साधु 5 महाव्रतधारी, 5 समिति 3 गुप्ति के धारक होते हैं	श्रावक 1 से 12 व्रतधारी होते हैं।
2.	साधु निर्दोष आहार पानी गृहस्थ के घर से लेते हैं अर्थात् भिक्षावृत्ति करते हैं।	श्रावक आजीविकावृत्ति करते हैं। श्रावक गोचरी नहीं कर सकता। 11वीं प्रतिमाधारी श्रावक ही भिक्षावृत्ति कर सकता है। दयाव्रत करने वाला श्रावक, भिक्षु दया (गोचरी की दया) नहीं कर सकता।
3.	साधु मुहाजीवी अर्थात् निर्दोष भिक्षा लेने वाले होते हैं।	श्रावक मुहादायी अर्थात् नि:स्वार्थ भाव से निर्दोष भिक्षा देने वाले होते हैं।
4.	ये अणगार होते हैं, इनका घर नहीं होता।	ये सागार होते हैं, इनका घर होता है।
5.	साधु सचित्त पदार्थों के सेवन का त्याग करते हैं।	श्रावक सचित्त-अचित्त पदार्थों की मर्यादा करते हैं।
6.	साधु-प्रतिक्रमण में श्रमणसूत्र की पाटी का उच्चारण करते हैं।	श्रावक, श्रावक सूत्र का उच्चारण करते हैं अर्थात् अपने व्रतों में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करते हैं। गोयरचरियाए, प्रतिलेखन दोष, 33 बोल, नमोचउवीसाए आदि पाटी का उच्चारण श्रावक नहीं करते हैं।
7.	साधु-साध्वी वाहन आदि का उपयोग नहीं करते बल्कि जीवों की रक्षा करते हुए नंगे पैर तथा सूर्योदय से सूर्यास्त तक ही विचरण करते हैं।	श्रावक मर्यादा में रहकर वाहन आदि का प्रयोग करते हैं।

8.	साधु के स्थान पर रात्रि में स्त्री का एवं साध्वी के स्थान पर पुरुष वर्ग का निवास तथा चर्चा-वार्ता वर्जित है।	जबकि श्रावक कुटुम्ब वर्ग के साथ निवास करता है, लेकिन अयोग्य स्थान पर निवास नहीं करता।
9.	साधु नियम रूप से अपने सभी भण्डोपकरण की प्रतिदिन दो बार प्रतिलेखना करते हैं।	जबकि श्रावक के लिए नित्य प्रति अपने सभी भण्डोपकरण की प्रतिलेखना करने का नियम नहीं है।
10.	साधु तीन प्रकार के पात्र रखते हैं। लकड़ी का, तुम्बे का एवं मिट्टी का।	श्रावक सभी प्रकार के बर्तन आदि का मर्यादा के उपरांत त्याग करता है।
11.	साधु गृहस्थ के घर में या जहाँ पर अग्नि, पानी का आरंभ होता है, वहां एक या दो रात्रि से अधिक नहीं ठहरते हैं।	श्रावक अनर्थदंड का त्याग करते हैं तथा सामायिक पौषध के समय सेल की घड़ी, कूलर, पंखा आदि इलेक्ट्रोनिक साधन अर्थात् तेउकाय अप्कायादि जीवों की विराधना नहीं करते।
12.	साधु मनुष्य ही होते हैं।	श्रावक तिर्यंच पंचेन्द्रिय व मनुष्य दोनों हो सकते हैं।
13.	साधु का छठे से चौदहवां गुण-स्थान होता है।	व्रतधारी श्रावक का पाँचवां तथा व्रतरहित सम्यक्दृष्टि श्रावक का चौथा गुणस्थान होता है।
14.	साधु मोक्ष जा सकते हैं।	श्रावक का साधु बने बिना मोक्ष संभव नहीं है।
15.	साधु एक गांव या नगर में 29 रात व साध्वी 58 रात से अधिक नहीं रूक सकती।	श्रावक के लिए ऐसा कोई नियम नहीं, उसका स्थायी निवास होता है।
16.	साधु के मुंहपत्ती व रजोहरण अनिवार्य होता है।	श्रावक के लिए सामायिक, पौषध, संवर में मुँहपत्ती, पुँजनी, डांडिया का उपयोग एवं संत मुनिराजों से ज्ञान चर्चा आदि में मुखवस्त्रिका धारण करना अनिवार्य है।
17.	साधु वर्ष में दो बार सिर का लोच करते हैं।	श्रावक के लिए लोच अनिवार्य नहीं है।
18.	पंचपरमेष्ठी में साधु का स्थान है।	श्रावक का नहीं है।
19.	साधुजी द्वादशांगी वाणी के ज्ञाता एवं पाँचों ज्ञान के धारक हो सकते हैं।	किन्तु श्रावक मुख्य रूप से जीवाजीव के ज्ञाता होते हैं एवं मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के धारक हो सकते हैं।
20.	साधुजी श्वेत एवं अल्पमूल्य के वस्त्र ही उपयोग में लेते हैं।	श्रावक मर्यादित वस्त्र के अलावा त्याग करता है।
21.	साधुजी का चोलपट्टा लगभग घुटने से 4 अंगुल नीचे होता है।	श्रावकजी सामायिक आदि आराधना में खुली लांग की धोती या चोलपट्टा धारण करते हैं।
22.	साधुजी 72 एवं साध्वीजी 96 हाथ वर्ग वस्त्र से अधिक नहीं रखते।	श्रावक अपनी साधना को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए मर्यादित वस्त्र आदि रखते है।
23.	साधुजी 27 गुणों के धारक होते हैं।	श्रावकजी 21 गुणों से संपन्न होते हैं।
24.	साधु अनेक प्रकार के अभिग्रह विशेष से अपने जीवन को सुसज्जित करते हैं।	श्रावकजी अपने पर्वत जितने पाप को राई जितने करने हेतु 14 नियम आदि का पालन करते हुए अपने जीवन को सुसज्जित करते हैं।

पवित्र भावनाओं से ही आचरण पवित्र होता है-व्यवहार शुद्ध होता है। आध्यात्मिक साधना में गति आती है। अत: साधक को अपने अंगीकृत व्रतों का अच्छी तरह से पालन करना चाहिये। तीर्थंकर भगवान ने भव्य आत्माओं के कल्याण के लिए व्यवस्थाएं मर्यादाएं बताई। जहां जीवन अनुशासित है वहीं आत्मा का विकास है।

''भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मइ दिवं''

चाहे साधु हो या श्रावक जो सुंदर अर्थात् निरतिचार व्रत पालन करने वाला है वही देवलोक में जाता है।

2. सचित्त-अचित्त विवेक

पृथ्वीकाय (सचित्त)

1. रंगोली
2. खड़ी
3. पानी में भीगी खड़ी
4. सूखी मुलतानी मिट्टी
5. पानी में डाली हुई मुलतानी मिट्टी
6. काली मिट्टी
7. पीली मिट्टी
8. चार अंगुल नीचे की खुदी हुई मिट्टी
9. तेज आंधी तूफान में उड़कर आने वाली मिट्टी
10. हिंगलु
11. हड़ताल
12. पत्थर का भीतरी भाग
13. भूमि का भीतरी भाग
14. हीरे का भीतरी भाग
15. फर्श का भीतरी भाग
16. पत्थर का टुकड़ा टूटने पर बीच का भाग
17. घिसाई किया जाता हुआ पत्थर
18. घिसते हुए पत्थर का पाउडर
19. तत्काल खदान से निकला पत्थर
20. तत्काल खदान से निकली धातु
21. भोडर (अभ्रक) की राखी
22. सफेद नमक
23. सेंधा नमक
24. सिके हुए नमक में पानी छूट गया हो तो
25. स्लेट पर लिखने वाली कलम (बरता)

26. तालाब के किनारे की जमी पपड़ी।

पृथ्वीकाय (अचित्त)

1. गुलाल
2. सिन्दूर
3. पाउडर
4. रंगीन कलम
5. सचित्त मिट्टी पर यातायात आवागमन होने पर
6. काला नमक
7. सिका नमक
8. काले नमक में पानी छूटने पर भी अचित्त
9. चिप्स पर डाला नमक
10. चॉक (Chalk)

नोट :- चॉक अचित्त होता है और बरता सचित्त होता है।

अप्काय (सचित्त)

1. बारिश का पानी
2. नल का पानी
3. तालाब का पानी
4. हैण्डपम्प का पानी
5. ओस का पानी (बूंदे)
6. कुएं का पानी
7. चूने का पानी
8. बर्फ, बर्फ का गोला, बर्फ का पानी
9. दीवार से निकलने वाला पानी
10. धोवन पानी (5 प्रहर पश्चात्)
11. धोवन पानी बनने के बाद 15 मिनट तक

12. डिस्टिल वाटर
13. गर्म पानी (वर्षाकाल में 3 प्रहर के बाद, शीतकाल में 4 प्रहर के बाद, ग्रीष्मकाल में 5 प्रहर के बाद सचित्त)
14. आटा गूंदते समय यदि उसमें सचित्त (कच्चा) पानी डाला गया है
15. फ्रीजर में अंदर बर्तन पर जमी बर्फ या पानी सचित्त
16. A.C. से निकला हुआ पानी

अप्काय (अचित्त)

1. धोवन पानी संभवतया 15 मिनिट बाद तथा लगभग 5 प्रहर तक
2. गर्म पानी (वर्षा, सर्दी, गर्मी में क्रमशः 3, 4, 5 प्रहर तक अचित्त)
3. साजी का पानी (चाहे कितने भी दिनों का हो)
4. दूध के बर्तन को धोया हुआ पानी
5. आटे की परात आदि बर्तन धुला पानी
6. चावल, दाल, पोहा आदि धान्यों का धुला पानी
7. भाप
8. बर्तन के अन्दर ठण्डी वस्तु को रखने पर बर्तन के बाहर आने वाला पानी। (जो वातावरण की भाप का परिवर्तित रूप है)

ज्ञातव्य :- 1. सीलन (Moisture) का संघठा नहीं होता।
2. गीजर का पानी लेना नहीं किन्तु संघटा नहीं टालना।

तेउकाय (सचित्त)

1. अग्नि
2. भोभर
3. अंगारा
4. आकाश में चमकने वाली बिजली
5. विद्युत (Electricity)

6. जलता दीपक
7. जलता धूप
8. जलता हुआ लोभान, जलती हुई मोमबत्ती
9. जलती हुई अगरबत्ती
10. जलती हुई तीली
11. चालू फ्रीज
12. चालू टार्च
13. चालू केलक्यूलेटर
14. चालू टी.वी. रिमोट (In Operation)
15. चालू गैस लाइटर
16. चलती गाड़ी
17. बैट्री से चलने वाली घड़ी (सैल घड़ी)
18. कम्प्यूटर (हर समय)
19. गाड़ी का रिमोट (जब चालू हो)
20. सौर (Solar) कुकर जब चालू हो
21. सभी प्रकार के इलेक्ट्रिक उपकरण चालू हालत में।
22. सौर ऊर्जा से संचालित वस्तुऐं चालू हालत में।

तेउकाय (अचित्त)

1. राख
2. सूर्य ताप
3. टी. वी. जब बंद हो
4. टार्च जब बंद हो
5. केलक्यूलेटर जब बंद हो
6. गैस लाइटर जब बंद हो
7. प्लग लगा हो पर स्विच ऑन नहीं हो
8. सौर कूकर जब बंद हो।

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
1.	बादाम (Almond)	साबुत, ठंडे पानी में भीगा हुआ एवं जिसके दो टुकड़े न किये हों।	पीसा हुआ, तेज गर्म पानी में भीगा हुआ जिसके सीधे दो फाड़ है अथवा नुक्का रहित भाग, नमकीन (Flavoured)
2.	खुरमानी (Apricot)	बीज सहित	बीज रहित
3.	काजू (Cashewnut)	–	सभी प्रकार के
4.	खजूर (Dates)	बीज सहित	बीज रहित
5.	अंजीर (Figs)	सूखा, साबुत या भीगा हुआ (Milk Shake)	
शस्त्र परिणत – जैसे दूध में उबला हुआ			
		बिना उबला हुआ	पका हुआ
6.	अखरोट (Walnuts)	छिलके सहित	टुकड़ा
7.	मूंगफली (Peanuts)	कच्ची मूंगफली	सिकी हुई, उबली हुई, पीसी हुई आदि
8.	पिस्ता (Pistacho)	सादा पिस्ता	नमकीन, टुकड़े
9.	किशमिश (Raisins)	सूखी, भिगाई हुई	शस्त्र परिणत – सेकी हुई, उबली हुई
10.	केसर (Saffron)	–	हर प्रकार से
11.	नोजा (तिलगोजा)	छिलके सहित/रहित	सिका हुआ

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
12.	चिरौंजी	साबुत	सिकी हुई
13.	बीज (सूखे, गीले)	खरबूज, तरबूज आदि सभी प्रकार के बीज	तले, उबले, सेंके हुए
14.	सुपारी	बड़ी सुपारी (छायली अखण्ड सुपारी) जैसे साते की कच्ची सुपारी	चिकनी सुपारी, मीठी सुपारी, छायली सुपारी (उबली हुई)
15.	मुनक्का	बीज सहित	बीज रहित/शस्त्र परिणत
16.	खारक	बीज सहित	बीज रहित
17.	मुरब्बा	–	आंवला, बेल, सेवफल बेर आदि सभी प्रकार के मुरब्बे
18.	फिटकरी	–	अचित्त
19.	सौंफ	साबुत, कच्ची	सेकी, पीस कर छनी हुई
20.	हींग	–	अचित्त (सूखी, गीली)
21.	तेजपत्ता	–	अचित्त
22.	जीरा	साबुत	सेका, पिसा हुआ

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
23.	राई	साबुत	पिसी, सेकी, छोंक में डाली हुई
24	सादा नमक, सैंधा नमक	सादा व सिका हुआ नमक पानी छोड़ने पर	सिका हुआ
25.	काला नमक	–	अचित्त
26	अजवाइन	दाने	सिकी हुई या पीसकर कपड़े से छानी हुई
27	दालचीनी	–	अचित्त
28	सूखी लाल मिर्ची (Chilly Flakes)	साबुत, टुकड़ा	पिसी हुई व छनी हुई
29	मिर्च पाउडर	बिना छना	अचित्त (छना हुआ)
30	सूखा धनिया	साबुत, आधा टुकड़ा	पिसा हुआ
31	नींबू का सत	–	अचित्त
32	लौंग	–	अचित्त
33	मेथी भाजी	हरी पत्ती	सूखीपत्ती (पाना मेथी)
34	दाना मेथी	साबुत, भीगी हुई, कच्ची	पिसी हुई, पचाई हुई, उबली हुई
35	सौंठ	–	पाउडर, गांठिया

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
36	सोने/चांदी का वरक	–	अचित्त
37	गोंद	–	अचित्त
38	साजी	–	अचित्त
39	शहद	–	अचित्त
40	मुलेठी	–	टुकड़ा, पिसा हुआ
41	पीपरामूल	–	अचित्त
42	तालमखाणा	–	अचित्त
43	गुड़	–	अचित्त, रात में पानी में भीगा हुआ भी
44	शक्कर, चीनी, मिश्री, बूरा	–	अचित्त
45	अमचूर	–	टुकड़ा, पिसा हुआ
46	जायफल	साबुत	घिसा हुआ, पिसा हुआ, पचाया हुआ
47	अनारदाना	गीला, सूखा	पिसा हुआ
48	खस–खस	कच्चा दाना	सिका हुआ
49	तिल	कच्चा दाना	सिका हुआ

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
50	इमली	साबुत, बीज सहित, कच्ची	बीज रहित पकी इमली
51	हल्दी	कच्ची हल्दी	सूखी, पिसी हुई
52	इलायची	साबुत, दाने	सिकी हुई, पाउडर, चाशनी वरक लगी हुई
53	पीपर	साबुत	सिकी हुई, पीसी हुई (कपड़ा छान)
54	हरड़	बड़ी हरड	छोटी हरड़
55	चूरी/मीठी सौंफ	–	अचित्त
56	कायफल	–	अचित्त
57	कांगणी (राजगिरी)	दाने	लड्डू, चक्की, आटा
58	मूसली	गीली	सूखी
59	काली मिर्च	साबुत	पाउडर, टुकड़ा (या दरदरा किया हुआ)
60	चन्दन	–	अचित्त
61	चावल	(छिलका सहित)	छिलके निकले, आटा (कच्चे दाने, पके हुए)

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
62	साबुदाना	–	अचित्त
63	मुरमुरा (मूड़ी)	–	अचित्त
64	दाल (छिलका, बिना छिलका)	–	अचित्त
65	साबुत चना, मोठ, मूंग, मसूर, राजमा आदि सभी	सूखा/भीगा हुआ	पकाया हुआ
66	पिसा हुआ आटा	बिना छना हुआ	छना हुआ
67	कंद, मूल	कच्चा	पका हुआ
68	फूल	हरे, कच्चे, गेंदे का सूखा फूल बीज सहित	सूखी हुई पंखुड़िया, बीज रहित गुदा भाग
69	फल	कच्चे, पके हुए बीज सहित	बीज रहित गुदा भाग
70	बीज/गुठली	गीला, सूखा, भीगा हुआ	पकाया हुआ, पिसा हुआ
71	छिलके	सभी हरी सब्जी के छिलके	पके हुए फलों के छिलके
72	अचार (Pickle)	अचार डालने के आठ दिन तक, नींबू का अचार जब तक छिलका न गले	आठ दिन के पश्चात् का अचार/ नींबू का छिलका गल जाने पर

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
73	केला	कच्चा	पका
74	अन्नानास	कांटे सहित	कांटे रहित
75	अंगूर	साबुत, गर्म पानी से निकाला हुआ	शस्त्र परिणत–सब्जी बनी हुई, पूरा उबला हुआ
76	भुट्टा	सिका हुआ (मिश्र की शंका) दाने साबुत, छिले हुए	उबला हुआ, दाने निकाल के सिके हुए
77	सिंघाड़े, कच्चे हरे बादाम	साबुत छिले हुए	उबले हुए
78	पका नारियल	बीज सहित, कच्चे पानी से धोया हुआ	बीज रहित नारियल के टुकड़े व पानी
79	कच्चा दूध	–	अचित्त
80	मक्खन	–	अचित्त
81	गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, बाजरी, मक्का इत्यादि	साबुत सचित्त	छना हुआ आटा, दलिया
82	सभी प्रकार की हरी सब्जी सुधारी हुई, कचूमर, सलाद	सचित्त	पकी हुई सब्जी
83	स्ट्रॉबेरी	साबुत, सुधारी हुई (Milk Shake टुकडे सहित)	ज्यूस कपड़े से छना हुआ (20 मिनट बाद)

क्र.स.	वस्तु	सचित्त	अचित्त
84	नींबू का टुकड़ा	बीज सहित	बीज रहित
85	पापड़ खार	–	अचित्त
86	लीलन–फूलन सहित वस्तुएँ	सचित्त	–
87	हल्की सी फ्राई की हुई सब्जियाँ	सचित्त	–
88	कच्ची प्रत्येक वनस्पति का ज्यूस	बिना छना	बारीक कपड़े से छना हुआ (निकलने के 20 मिनट बाद)
89	कन्द, मूल, साधारण वनस्पति का ज्यूस	छना हुआ या अनछना	शस्त्र परिणत अर्थात् उबला हुआ या नमक, ग्लूकोस, शक्कर आदि मिलाया हो (मिलाने के 20 मिनट बाद)
90	पके फलों का ज्यूस	बीज सहित	बीज रहित। बीज सहित ज्यूस (छना हुआ)

केला अचित्त या सचित्त एक समीक्षा

मूर्धन्य मुनिराजों ने आगम धरातल को सम्मुख रखते हुए अपनी प्रज्ञा से एवं श्रावक वर्ग के सहयोग से सन् 1933 के अजमेर साधु सम्मेलन में यह निर्णय किया था कि वर्तमान में जो प्रचलित केले हैं वे अचित्त हैं।

70 वर्ष पूर्व निर्णय हो जाने के बावजूद कोई सम्प्रदाय विशेष पुनः केले को सचित्त सिद्ध करने का दुष्प्रयास कर रहा है। वे इसी दुष्प्रयास में आगम का आधार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं- 'भगवती सूत्र के बाइसवें शतक के प्रथम वर्ग में इस प्रकार वर्णन है कि-ताल, तमाल, यावत् कदली (केला) वलय वर्ग में आते हैं। वलय वर्ग की वनस्पति के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज ये दस अवयव होते हैं। अतः केले में भी मूल से बीज पर्यन्त दसों अवयव होने से वह सचित्त है।' लेकिन उनका यह कथन आगमानुकूल नहीं है! क्योंकि वलय वर्ग की प्रत्येक वनस्पति में दसों अवयव हो ही, ऐसा उल्लेख शास्त्र में नहीं है। संभव है वलय वर्ग की किन्हीं वनस्पतियों में कुछ अवयव तथा किन्हीं वनस्पतियों में कुछ अवयव हो। सभी वनस्पतियों में दसों अवयव होना आवश्यक नहीं है। इसी आशय के भाव ''सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ'' द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के विवेचन में प्रकट किये गये हैं। वहाँ लिखा है कि ''आगम निर्दिष्ट उत्कृष्ट अवगाहना प्रथमादि आरों की अपेक्षा ताल वर्ग के किसी भेद की समझनी चाहिये सभी की नहीं। दूसरी बात यदि उपलब्ध केले के वृक्ष को ताल वर्ग में नहीं माना जाए तो किस में माना जाए उसके लक्षण से तो ताल वर्ग में ही ग्रहण करना होगा।.....'' सुधर्म संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र की विवेचना के अन्तर्गत आए इस वर्णन को यदि सही माना जाए तो इसमें एक बात सामने आती है कि इस सूत्र में आए वर्ग से संबंधित वर्णन वर्ग में रही हुई सभी वनस्पतियों के लिए समान रूप से लागू नहीं होती।

''इसी परिप्रेक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वलय की वनस्पतियों के लिए जो दस अवयव बताये हैं। वे दसों अवयव वलय वर्ग की प्रत्येक वनस्पति में हो ऐसा आवश्यक नहीं है।'' संसार में दिखने वाली वनस्पतियों से भी यही बात पुष्ट होती है। नारियल, खजूर आदि वृक्षों में शाखा दिखलाई

नहीं पड़ती है। जबकि दस अवयव में शाखा का भी कथन किया गया है।

ऐसे ही भगवती सूत्र 21वें शतक के 5वें वर्ग में इक्षु (गन्ना) आदि वनस्पतियों में भी समुच्चय रूप से मूल से लेकर बीज तक दस उद्देशक बतलाए हैं। गन्ने में स्कन्ध किसे माना जाए तथा फल किसे माना जाए? गन्ने के रसदार भाग को यदि फल माना जाए तो गन्ने में स्कन्ध नहीं होना यह मानना होगा तथा यदि गन्ने के रसदार भाग को स्कन्ध माना जाए तो गन्ने का फल किसे माना जाए? इसी तरह भगवतीसूत्र के 22वें शतक के चौथे एवं पाँचवें वर्ग में गुच्छ एवं गुल्म वर्ग का वर्णन किया है। उसके अन्तर्गत रहे गुलाब के पौधे में भी फल एवं बीज देखने को कहाँ मिलते हैं, जबकि शास्त्रकारों ने इसमें मूल से बीज पर्यन्त दस उद्देशक बताये हैं। भगवतीसूत्र के अन्य 2 स्थानों में भी ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे यह बात सुस्पष्ट है कि वलय वर्ग की प्रत्येक वनस्पति में दसों अवयवों का होना आवश्यक नहीं है। इस अपेक्षा से वर्तमान में प्रचलित खाद्य केलों में भी बीज नहीं मानना संगत ही है। अतः भगवतीसूत्र के इस पाठ से केले में बीज सिद्ध करने का प्रयास गलत है। क्योंकि आगमिक वर्णन समुच्चय की अपेक्षा से किया गया है। इस प्रकार केले में बीज की मौजूदगी बताने के लिए आगम के जिस एकमात्र पाठ को प्रस्तुत किया जाता है उसका पूर्वापर संबंध देखने पर मालुम पड़ता है कि इस पाठ से केले में बीज सिद्ध नहीं हो सकता।

श्री वृहत् कल्पसूत्र व सैंकड़ों वर्ष पुराने उसके भाष्य पर दृष्टिपात करने पर सूर्यालोकवत् स्पष्ट हो जाता है कि पका हुआ केला अचित्त है। इस सूत्र में कहा गया है कि साधुओं को पका हुआ केला ताल प्रलम्ब भिन्न हो चाहे अभिन्न हो ग्रहण करना कल्पता है और साध्वियों को पका हुआ केला विधिपूर्वक टुकड़ा किया हुआ हो तो लेना कल्पता है? वृत्तिकार ने पक्व का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है अग्नि से संस्कृत जैसे बिल्ब आदि। अपक्व अर्थात् जो अग्नि से, धूप से, कोठे के ताप आदि अन्य किसी भी प्रकार न पकाए गये हो फिर भी निर्जीव है जैसे ऋतु परिपक्व कदली फल। केले को निर्जीव बताने वाला यह भाष्य सैंकड़ों वर्ष पुराना है।

इसी तरह निशीथसूत्र के 15वें उद्देशक में 4920 गाथा पर संघ दास गणि का भाष्य है। उस पर जिनदास की चूर्णि है उसमें कहा है-''आमं णाम जं

अपडालियं अग्गिणा न पक्कंति अण्णेण वा केणइ पगारेण ण पक्कं निज्जीवं च जहा कदली फलं'' अर्थात् अग्नि आदि किसी प्रकार से पका हुआ न होकर डाल पर पका हो वह निर्जीव जैसे **कदलीफल**। उक्त पाठ से स्पष्ट है कि खाने योग्य केले की जाति के फल में न कच्चे में बीज होते हैं और न पक्के में। आगमिक संदर्भों की चर्चा के बाद वर्तमान विज्ञान भी इस संदर्भ में अपना क्या मन्तव्य प्रस्तुत करता है? इसे जानना आवश्यक है।

वैज्ञानिक धरातल श्री रणजीतसिंह ने अपनी पुस्तक Fruits में लिखा है कि केला अन्य फलों से अलग बीज रहित फल है। बीज की परिभाषा करते हुए कहा है कि, बीज ऐसा परिपक्व बीजाण्ड है जिसमें Embryo आदि पाये जाते हैं जबकि केले में परिपक्व बीजाण्ड नहीं होता। वनस्पति विज्ञान का सामान्य जानकार भी इस बात को जानता है कि परागण क्रिया एवं निषेचन क्रिया के बाद ही Embryo का निर्माण हो सकता है जबकि केले में परागण क्रिया (Polli-Nation) एवं निषेचन क्रिया होती ही नहीं। केले का विकास कायिक जनिक होता है। जिसके लिए तकनीकी शब्द है ''पार्थिनो कारपी'' जिसका सम्बन्ध बीज रहित विकास से जुड़ा हुआ है। अत: बाजार में उपलब्ध खाद्य केलों में बीज नहीं होता। वनस्पति शास्त्र में जंगली केले जो खाने योग्य नहीं है। उसमें बीज माना गया है तथा इसमें परागण क्रिया एवं निषेचन क्रिया को स्वीकारा है।

Fruit Breeding अथवा ऐसे ही अन्य ग्रन्थों में कहा गया है कि आधुनिक तकनीक से Tissue Culture की विधि से खेती करने वाले भी केले की जड़ों से महीन टुकड़ा निकालकर उसके माध्यम से केले के वृक्ष उत्पन्न करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि केले की काली धारी में बीज नहीं होता अगर उसमें बीज पाया जाता तो Tissue Culture द्वारा बीज निकालकर खेती करना बहुत आसान होता।

विश्रुत विद्वान कृषि वैज्ञानिक डॉ. बालकृष्ण एवं महू E.V. College के रिटायर्ड वैज्ञानिक प्रोफेसर डॉ. कृष्णदास यादव भी लिखते हैं कि खाने के उपयोग में आने वाला केला बीज रहित है। केले का वृक्ष भी Sucker (भूमिगत स्कन्ध) के माध्यम से उगाया जाता है। केले में दिखने वाली काली धारी बीज रूप नहीं है। वह एवोरटेड ओव्यूल है, अर्थात् विनष्ट बीजाण्ड है

जिसमें अब बीज पैदा करने की शक्ति नहीं है।

इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी इस प्रकार है-सामान्यत: केले की प्रजातियाँ जो खाने के लिए काम लाई जाती है। वह बीज रहित है। अनुवांशिकी (Geneties) के अनुसार केला ट्रिपलोइड पौधा है जिसके कारण वह नपुंसक होता है इस प्रकार के पौधे में अर्धसूत्रीय कोशिका का विभाजन नहीं होता जिससे ये शुक्राणु उत्पन्न नहीं कर सकते। इसमें अण्डाशय का विकास बिना परागण व निषेचन क्रिया के होता है। जिसे जीव विज्ञान की भाषा में पार्थिनोकारपी कहते हैं इस प्रकार विकसित फल बीज रहित होते हैं।

इस तरह वनस्पति विज्ञान के आधार से केले की निर्जीवता सिद्ध होने पर जैनागमों पर पुन: दृष्टिपात करें। तीर्थंकरों ने युगों पहले ही इस विषय को केवलज्ञान से जानकर प्ररूपित कर दिया था कि सभी वनस्पति की उत्पत्ति के लिए बीज होना आवश्यक नहीं है।

श्री प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में कहा है किसी की योनि त्वचा, किसी की योनि छल्ली, किसी की योनि प्रवास, किसी की योनि पत्र, किसी की योनि बीज है। विज्ञान भी इसी बात के अनुरूप कहता है कि केला बीज से उत्पन्न नहीं होता।

इस प्रकार वनस्पति विज्ञान, आगमिक आधार, कृषि वैज्ञानिक तथा प्रत्यक्ष के कृषि अनुभवों से यह प्रमाणित है कि वर्तमान में प्रचलित खाद्य केलों में बीज नहीं है। पके केले निर्जीव हैं तथा सचित्त के त्यागी श्रावक व संत मुनिराज उसे नि:शंक ग्रहण कर सकते है।

-----●-----

असंज्ञी मनुष्य के प्रश्नोत्तर

प्रश्न.१ असंज्ञी मनुष्य कैसे होते हैं और कहाँ उत्पन्न होते हैं व अधिकतम कितने हो सकते हैं?

उत्तर- असंज्ञी मनुष्य (असन्नी मनुष्य) मिथ्यादृष्टि एवं निश्चित रूप से अपर्याप्त होते हैं। इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्येयतम भाग की है, आयु अन्तर्मुहूर्त (1 सेकण्ड के लगभग 23वें हिस्से प्रमाण) की होती है। कभी होते हैं कभी नहीं, यदि हों तो एक से लेकर अधिकतम असंख्येय (असंख्यात) हो सकते हैं।

उत्पन्न होने का स्थान- अढ़ाई द्वीप-समुद्रों में, 15 कर्मभूमियों में, 30 अकर्मभूमियों में, 56 अन्तर्दीपों में। गर्भज मनुष्यों के उच्चारों (मल) में, प्रस्रवणों (मूत्रों) में, नाक के मैल में, कफ में, वमनों में, पित्तों में, मवादो में, रक्तों में, शुक्रों में (वीर्य), शुक्रपुद्गलपरिशट में, मनुष्य की लाशों में, स्त्री-पुरुष के संयोगों में, नगर के गटरों (नालियों) में, सभी अशुचि स्थानों में असंज्ञी मनुष्य (सम्मूर्च्छिम मनुष्य) माता-पिता के संयोग के बिना स्वत: उत्पन्न होते हैं। (प्रमाण- श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र 1 पद)

प्रश्न.२ हमारे शरीर के भीतर रहे मल, मूत्र आदि रूप अशुचि में असंज्ञी मनुष्य उत्पन्न होते है या बाहर पड़ी हुई अशुचि में?

उत्तर-असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति शरीर के भीतर व बाहर दोनों स्थानों में होती है, जैसे शरीर के भीतर रहे मल में कृमि आदि द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही आगम में उच्चार आदि को असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति योग्य योनि कहा है। वे उच्चार आदि शरीर के भीतर एवं बाहर दोनों जगह होते हैं। अत: दोनों जगह असंज्ञी मनुष्य उत्पन्न हो सकते है। स्त्री-पुरुष संयोग तो शरीर के भीतर ही होता हैं।

प्रश्न.३ असंज्ञी मनुष्यों की विवृत योनि होती है तो वे शरीर के भीतर (ढ़के हुए होने से) कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर-बाहर से ढ़के दिखते हुए स्थान को संवृत एवं बाहर से खुले दिखते हुए स्थान को विवृत मानना आगम से पूर्णतया सम्मत नहीं है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पांच स्थावरों की योनि संवृत मानी है। संवृत योनि

होने पर भी बाहर से पूर्णत: खुले दिखने वाले स्थानो में संवृत योनि वाले वायुकायिक जीव उत्पन्न होते ही हैं। मिठाई आदि की ऊपरी सतह खुली दिखने पर भी वहाँ संवृत योनि वाले फफूंद आदि वनस्पतिकायिक जीव उत्पन्न होते ही हैं। और तो और सूक्ष्म जीवों की एकान्तत: संवृत योनि होती हैं तथा उनकी उत्पत्ति संपूर्ण लोक में सर्वत्र होती है, चाहे वह स्थान बाहर से खुला दिखे या बंद अर्थात् जहाँ संवृत योनि वाले देव उत्पन्न होते हैं, वहां भी सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं तथा जहाँ विवृत योनि वाले द्वीन्द्रिय उत्पन्न होते हैं, ठीक उसी स्थान पर संवृत योनि वाले सूक्ष्म जीव भी पैदा होते हैं।

इसके विपरीत विवृत योनि वाले विकलेन्द्रिय जीव भी काजू, खजूर, फल आदि चारों तरु से बंद पदार्थो में उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं। इतना ही नहीं, विवृत योनि वाले होने पर भी जब कृमि आदि द्वीन्द्रिय जीवों का शरीर के भीतर उत्पन्न होना प्रत्यक्ष से प्रमाणित है तो विवृत योनि होने के कारण असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति शरीर के भीतर होती है अत: योनि प्रकरण से भी स्पष्ट है कि शरीर के भीतर भी विवृत योनि होती ही है और वहाँ सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति सुसंभव है।

प्रश्न.४ यदि असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति शरीर के भीतर भी संभव होती तो विगय जीव कलेवरेसु यानि मृत शरीर को ही उत्पति स्थान क्यों बताया, सिर्फ कलेवरेसु यानि 'शरीर' क्यों नहीं कहा?

उत्तर-विगयजीवकलेवरेसु कहकर यह बताया गया है कि मृत शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में असंज्ञी मनुष्य की उत्पति संभव है जबकि जीवित शरीर के चमड़ी आदि में असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति कदाचित् न हो ऐसा भी संभव है। यदि जीव रहित शरीर को ही उत्पत्ति स्थान बताना होता तो उच्चारेसु वा, पासवणेसु वा के आगे भी विगयजीव विशेषण लगता। इससे भी ये प्रमाणित होता है कि जीव की विद्यमानता असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति में बाधक नहीं है।

प्रश्न.५ क्या शरीर की गर्मी, गर्म धरती, धूप आदि बाहर की गर्मी असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति में बाधक नहीं है?

उत्तर-नहीं है, क्योंकि असंज्ञी मनुष्य की शीत, उष्ण, शीतोष्ण तीनों प्रकार की योनि बताई है। इसलिए शरीर की गर्मी आदि उनकी उत्पत्ति में

बाधक नहीं है।

प्रमाण:- श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र 9वाँ पद

प्रश्न.६ क्या असंज्ञी मनुष्यों की हिंसा हमारी कायिक प्रवृत्ति से होती है?

उत्तर- नहीं। असंज्ञी मनुष्यों की हिंसा हमारी कायिक प्रवृत्ति से नहीं होती है, ऐसा शास्त्रों से स्पष्ट है।

प्रश्न.७ यदि असंज्ञी मनुष्यों की हिंसा नहीं होती, तो परिष्ठापनिका समिति का क्या औचित्य है?

उत्तर- 5वीं परिष्ठापनिका समिति का असंज्ञी मनुष्य की हिंसा से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 24वें अध्ययन में जिन पदार्थों में असंज्ञी मनुष्य उत्पन्न नहीं होते, ऐसे भी अनेक पदार्थो (अनेषणीय, लीलन-फूलन युक्त आहार, वस्त्र, पात्र, शरीर आदि) के परिष्ठापन को 5वीं समिति के अन्तर्गत लिया है। श्री आचारांग सूत्र में ''जीर्ण हो चुके वस्त्र परठ दे'' ऐसा कहा है। श्री दशवैकालिक सूत्र में प्यास बुझाने में असमर्थ पानी को परठने का कथन है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 24वें अध्ययन में निर्दोष स्थण्डिल के 10 बोलों में ऐसा कोई भी बोल नहीं हैं जो असंज्ञी मनुष्यों की विराधना से संबंध रखता है। उच्चारादि का परिष्ठापन साधु की प्राय: प्रतिदिन की क्रिया का अंग होने से उनकी प्रधानता समझ कर उन्हें समिति के नाम में ग्रहण किया है, न कि असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति के कारण।

प्रश्न.८ असंज्ञी मनुष्य पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर है फिर भी उनकी हिंसा (प्रतिघात) हमारी कायिक प्रवृत्ति से नहीं होने का क्या कारण है?

उत्तर- बादर नामकर्म के उदय वालों की सर्वदा हिंसा हो ही यह संभव नहीं है, उसके सैद्धान्तिक बिंदु इस प्रकार है-

1. बादर नाम कर्म का उदय अपर्याप्त विग्रहगति में रहे जीवों के भी होता है किन्तु उनका प्रतिघात संभव नहीं है।

2. तैजस कार्मण शरीर को अप्रतिघाती बताया है। (प्रमाण:- तत्वार्थ सूत्र में - अध्ययन 2- सूत्र 41)

3. लब्धि सम्पन्न भावितात्मा अणगार तलवार की धार पर या उस्तरे की धार पर रह सकते है? तथा वहां रहते हुए छिन्न-भिन्न नहीं होते हैं? क्योंकि उन पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता है।

(प्रमाण:- श्रीमद् भगवती सूत्र शतक 18 उद्देशक 10)

4. आहारक शरीर में भी बादर नाम कर्म का उदय होता है किन्तु यह भी प्रतिघात को प्राप्त नहीं होता है।

(प्रमाण:-तत्वार्थ सूत्र अध्ययन 2 सूत्र 49)

5. औदारिक शरीरी जीवों के उत्पत्ति के प्रथम, द्वितीय समय में भी प्रतिघात नहीं माना है।

6. श्री भगवती सूत्र में कहा है - ऋद्धि प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अग्नि के बीच में से निकल जाते हैं फिर भी जलते नहीं हैं, उन पर शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता। ऋद्धि प्राप्त तिर्यंच, मनुष्यों की अवगाहना असंज्ञी मनुष्य की अवगाहना से असंख्येय गुणा अधिक है। इससे भली-भांति ज्ञात होता है कि बादर, त्रस, पंचेन्द्रिय होने मात्र से कोई जीव प्रतिघात योग्य हो ही जाय, यह आवश्यक नहीं है।

(प्रमाण:-श्रीमद् भगवती सूत्र, शतक 14, उद्देशक 5)

प्रश्न.९ बादर किसे कहते हैं?

उत्तर- बादर नाम कर्म के उदय से 'बादर' । जिस कर्म के उदय से जीव में बादर परिणाम उत्पन्न हो, उसे बादर नाम कर्म कहते है। जिसका शरीर बादर (स्थूल) हो, वह इन्द्रिय ग्राह्य हो, ऐसा जरूरी नहीं है।

प्रश्न.१० सूक्ष्म किसे कहते हैं?

उत्तर- सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से 'सूक्ष्म'। जिसका शरीर सूक्ष्म हो, वह इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं होता।

प्रश्न.११ श्री आचारांग सूत्र में (श्रुतस्कन्ध १/अध्ययन १/उद्देशक ६ सूत्र ४९) में प्रभु ने फरमाया है - अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज, औपपातिक आदि त्रस जीवों की हिंसा ३ करण, ३ योग से नहीं करना। इसमें सम्मूर्च्छिम की हिंसा का निषेध किया है फिर किस आधार से कहते हैं कि असंज्ञी मनुष्यों (सम्मूर्च्छिम

मनुष्य) की हमारी काया से हिंसा नहीं होती?

उत्तर- शास्त्रकार यहाँ सामुदायिक रूप से कथन कर रहे हैं। इन भेदों मे जिनकी कायिक हिंसा संभव हो, उनकी कायिक हिंसा न करें तथा जिनकी वाचिक एवं मानसिक हिंसा संभव है, उनकी वाचिक व मानसिक हिंसा न करें।

क्या मुनि नैरयिक जीवों की कायिक हिंसा कर सकता है? उत्तर - नहीं कर सकता, तो क्या यहाँ औपपातिक शब्द से यह समझ लिया जाय कि नैरयिक भी औपपातिक त्रस है अत: मुनि की या किसी भी मनुष्य की कायिक प्रवृत्तियों से उसकी भी हिंसा संभव है? उत्तर- नहीं, ऐसा समझना आगम का सही अर्थ नहीं है तथा श्री दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में - ''से सुहुमं वा बायरं वा .....'' मुनि सूक्ष्म या बादर जीवों की जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से हिंसा न करे।

श्री दशवैकालिक सूत्र के 6वें अध्ययन में कहा है- पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक की तीन करण तीन योग से हिंसा नहीं करते। इसके आधार पर कोई यह अर्थ निकाले कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक की भी काया से हिंसा हो सकती है तो यह अर्थ संगत नहीं है। यहाँ पृथ्वीकायिक आदि का सामान्य कथन है। चूंकि सूक्ष्म जीवों की काया से हिंसा संभव नहीं है यहाँ काया से हिंसा के प्रसंग पर पृथ्वीकायिक से बादर पृथ्वीकायिक अर्थ ही लिया जाएगा, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक नहीं।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम की हिंसा न करने का जो विधान है, उससे कोई यह अर्थ निकाले कि सम्मूर्च्छिममनुष्य (असंज्ञी मनुष्य) की भी काया से हिंसा हो सकती है, तो यह ठीक नहीं है। यहाँ सम्मूर्च्छिम का कथन है जिसमें असंज्ञीतिर्यंच पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि अनेक जीव सम्मिलित है, अत: इस पाठ से भी असंज्ञी मनुष्यों की काया से विराधना न होना सिद्ध है।

प्रश्न.१२ यदि असंज्ञी मनुष्यों की विराधना नहीं होती तो फिर ''जहाँ सूर्य की किरणें न पड़े वहाँ परठना'' ऐसी मान्यता के पीछे क्या कारण है?

उत्तर- ऐसी मान्यता कुछ सैकड़ों वर्षो से ही है, इसका कारण ''अणुग्गए सूरिए'' का अर्थ ''जहां सूर्य की किरणें न पड़े'' ऐसा समझ लिया गया। जबकि प्राचीन ग्रंथों में, बृहत्कल्प भाष्यवृति में, निशीथ भाष्य चूर्णि में ''अणुग्गए सूरिए'' का अर्थ ''सूर्योदय से पहले'' ही किया गया है।

जो 'अणुग्गए सूरिए' का 'सूर्य की किरणें न पड़े वैसा स्थान' यह अर्थ करते हैं, वे रात्रि के चतुर्थ प्रहर में मल-मूत्र की बाधा से निवृत्त होवें तो सूर्य की किरणें पड़े, वैसे स्थान पर परठेंगे। मल का प्रात: काल के कुछ घण्टों में सूखना प्राय: अशक्य है। उसके बाद असंज्ञी मनुष्यों से युक्त उस मल पर सूर्य की प्रखर किरणें पड़ेगी तो असंज्ञी मनुष्यों की विराधना मानने वालों के मत में उन असंज्ञी मनुष्यों को तेज धूप से बहुत पीड़ा होगी। जिन असंज्ञी मनुष्यों के लिए तथाकथित रूप से मनुष्य शरीर की 37°C (सैंतीस डिग्री सेन्टीग्रेड) की गर्मी भी शस्त्र है तो 45°C एवं 50°C की भयानक गर्मी को भला वे कैसे सहन कर पायेंगे? इस तरीके से असंज्ञी मनुष्यों की रक्षा का घोष करने वाले जानबूझकर सूर्य की किरणों से प्रकाषित होने वाले क्षेत्र में परठकर क्या त्रस, पंचेन्द्रिय मनुष्य की जानबूझकर हिंसा करने वाले एवं उन्हें धूप के ताप से पीड़ित होने को मजबूर करने वाले नहीं होगें? इतना ही नहीं दिन में भी धूप में मल विसर्जन करने पर भी उसका एक मुहूर्त में पूर्णत: सूख जाना अशक्यप्राय: है एवं मल ही नहीं, मूत्र एवं वस्त्र धोया हुआ पानी इत्यादि भी परिष्ठापन के बाद हर मौसम में सूख ही जाए, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में उन्हें धूप में परठना क्या उत्पन्न होने वाले जीवों को पीड़ा पहुँचाना नहीं होगा?

ज्ञातव्य है कि असंज्ञी मनुष्यों की कायिक प्रवृत्तियों से विराधना मानने वालों में भी मल-मूत्र से निवृत्त होते ही तुरन्त नहीं परठने पर प्रायश्चित्त नहीं है। विभिन्न परम्पराओं में असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति के मान्य कालमान 24 मिनट, 30 मिनिट या 48 मिनिट से पूर्व परठने पर प्रायश्चित्त नहीं आता है। विचारणीय है कि 48 मिनिट से 5-7 मिनिट पहले कोई मुनि जल्दी सूखने हेतु धूप में परठे तो 5-7 मिनिट के बाद उस गीले मल या मूत्र आदि पर धूप की तीक्ष्ण किरणों से क्या असंज्ञी मनुष्यों की तथाकथित विराधना का प्रसंग उपस्थित नहीं होगा, एवं यदि उन्हें धूप से बचाने के लिए जानबूझकर

छाया में परठे तो जल्दी नहीं सूखने पर वैसा मानने वालों को निरन्तर जन्म मरण रूप विराधाना का भागी बनना होगा? ऐसी स्थिति में 'एक तरु कुआँ एवं दूसरी तरु खाई' वाली कहावत चरितार्थ होगी।

इस प्रकार मुनि दिन के समय में-

1. न जानबूझकर धूप में परठ सकेगा।

2. न जानबूझकर छाया में परठ सकेगा।

साथ ही मुनि रात्रि के समय में भी

1. न जानबूझकर सूर्य की किरणें पड़े, ऐसे स्थान पर परठ सकेगा, क्योंकि जानबूझकर सूर्य की किरणें पड़े, ऐसे स्थान पर परठने से असंज्ञी मनुष्यों की धूप से तथाकथित विराधना होगी।

2. न जानबूझकर सूर्य की किरणें न पड़े, ऐसे स्थान पर परठ सकेगा, क्योंकि जल्दी न सूखने पर निरन्तर जन्म-मरण रूप तथाकथित विराधना ज्यादा होगी।

इस प्रकार से असंज्ञी मनुष्यों की विराधना की मान्यता अनागमिक होने के कारण घोर असमंजस एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति उत्पन्न करती है एवं शुद्ध मुनित्व की आराधना को 'असंभव' की कोटि में ला खड़ा करती है।

तीर्थंकर देवों का यह महामार्ग, संयममार्ग ऋजुभूत, सरल एवं स्पष्ट है। इसमें कहीं असमंजस या एक तरु कुआँ, एक तरु खाई वाली समस्या नहीं आती है। तीर्थंकर प्रभु की वाणी के अनुसार असंज्ञी मनुष्यों की हमारी कायिक प्रवृत्तियों से विराधना सर्वथा असंभव है।

प्रश्न.१३ असंज्ञी मनुष्य की विराधना हमारी कायिक प्रवृति से नहीं होती है, ऐसा शास्त्र के किस मूलपाठ से निकलता है?

उत्तर-असंज्ञी मनुष्य की विराधना हमारी कायिक प्रवृति से नहीं होती है ऐसा शास्त्रपाठ से सुसिद्ध है।

श्री निशीथ सूत्र के तृतीय उद्देशक के अंतिम सूत्र में रात्रि में मल-मूत्र का पात्र में विसर्जन कर दीर्घकाल तक रखकर सूर्योदय के बाद परठने का विधान है।

प्रश्न.१४ संयमी साधु के लिए मल-मूत्र त्याग का क्या विधान है?

उत्तर- बाहर जाकर वहीं बैठकर मल-मूत्र त्याग करना उत्सर्ग मार्ग है और मात्रक (पात्र) में मल-मूत्र त्यागना (करना) अपवाद मार्ग है। श्री निशीथ सूत्र में- ''सूर्यास्त से पूर्व उच्चार प्रस्रवण हेतु 3 तरह की भूमि प्रतिलेखन करना'' तथा ''रात्रि या विकाल में पात्र में विसर्जित कर दिया हो तो उस उच्चार प्रस्रवण को रात्रि या विकाल में नहीं परठे किन्तु सूर्योदय के बाद ही परठे, ऐसा कहा है। (1) रात्रि में परठने का तो मना किया है, (2) रात्रि के लिए ही दिन में भूमि प्रतिलेखन करने का कहा है। इन दोनों बातों से सिद्ध होता है कि भूमि प्रतिलेखन, वहीं जाकर बैठने की अपेक्षा से है जो कि उत्सर्ग मार्ग है। मात्रक में करना अपवाद मार्ग है। मात्रक में करना तो अपवाद है ही, रात्रि में 'परठना' भी अपवाद है।

प्रश्न.१५ उत्सर्ग और अपवाद का तात्पर्य क्या है?

उत्तर- निर्दोष चारित्र की आराधना के लिए संयमी साधकों को जिन नियमों का पालन करना अनिवार्य है, वह उत्सर्ग मार्ग है और कारण के उपस्थित होने पर विवशतावश जिन दोषों का सेवन करना पड़ता है वह अपवाद मार्ग है।

प्रश्न.१६ जहाँ उच्चार प्रस्रवण विसर्जन की भूमि है वहीं जाकर बैठकर मल-मूत्र विसर्जन करना उत्सर्ग मार्ग है तो मात्रक में करके अपवाद का सेवन किस कारण से करते हैं?

उत्तर-श्री निशीथ सूत्र के भाष्य एवं चूर्णि में मात्रक में मल-मूत्र विसर्जन के अनेक कारण बताए हैं। वे इस प्रकार है-

1. ग्लान मल-मूत्र विसर्जन की भूमि तक जाने में समर्थ न हो तो,
2. संलेखना आदि अनशन करने वाला मुनि जाने में समर्थ न हो तो,
3. मल-मूत्र विसर्जन की भूमि न हो तो,
4. मल-मूत्र विसर्जन की भूमि अनेक गृहस्थों से युक्त हो तो,
5. मार्ग में सचित्त पृथ्वी आदि हो तो,
6. रात्रि में उपाश्रय से निकलते हुए जंगली जानवरों का भय हो तो
7. चोरों का भय हो तो,

8. सर्प का भय हो तो,

9. प्रमेह और मूत्रशर्करा, इन दो तरह के रोगों के कारण बार-बार मूत्र विसर्जन करना पड़ता हो तो,

10. अनुयोग कथन या धर्मकथा करना हो तो,

11. मोक प्रतिमा स्वीकार की हुई हो तो,

12. बाधा की तीव्रता के कारण मल-मूत्र विसर्जन की भूमि तक जाने में समर्थ नहीं हो तो,

13. मूत्र विसर्जन की भूमि अल्प हो या जीव सहित हो तो,

14. बाहर साधु के स्वज्ञातिजन आदि गृहस्थ हो तो,

15. घर के अन्दर बाड़े आदि में विसर्जन करने से शय्यातर को अप्रीति होती हो तो,

16. स्त्रियों का भी मूत्र विसर्जन हेतु उसी भूमि पर जाना होने से भूमि स्त्रियों से भाव प्रतिबद्ध हो तो,

17. वर्षा, धूँवर आदि गिरने पर जीवदया का प्रयोजन हो तो,

18. विद्या (मंत्र प्रयोग) सम्बन्धी उपचार में ''मूत्र से छींटना है'' इस कारण से।

जहाँ इन कारणों में वर्षा, धूँवर आदि अप्कायिक जीव तथा सचित्त पृथ्वी रूप पृथ्वीकायिक जीव इन स्थावर जीवों की रक्षा हेतु भी मात्रक में करके सूर्योदय के पश्चात् परठने का ही बताया है, वहाँ असंज्ञी मनुष्य जो कि पंचेन्द्रिय है, फिर भी उनकी विराधना सम्बन्धी कोई चर्चा मात्र भी नहीं है।

प्रश्न.१७ रात्रि में परठना अपवाद क्यों है?

उत्तर-श्री निशीथ सूत्र के भाष्य एवं चूर्णि में इसके दोष बताए हैं कि वह आज्ञा भंग, अनवस्था, मिथ्यात्व तथा आत्म विराधना व संयम विराधना को प्राप्त करता है, इसलिए मुनि सूर्योदय होने पर ही परठे।

प्रश्न.१८ रात्रि में मात्रक में रहे मल-मूत्र को नहीं परठने का क्या कारण है?

उत्तर-श्री निशीथ सूत्र में भगवान की स्पष्ट आज्ञा इसमें प्रमाणभूत है।

केवली भगवन्तों के असीम ज्ञान के समक्ष हमारी मति बहुत छोटी है। सर्वज्ञ भगवान ही नहीं भाष्यकारों ने भी स्पष्ट रूप से मात्रक में विसर्जित मल-मूत्र को रात्रि में बाहर परठने का निषेध किया है। अपवाद में ही रात्रि में मात्रकगत मल-मूत्र परठा जा सकता है, अन्यथा नहीं। उपद्रव हो या नहीं, बाहर रात्रि को मात्रकगत मल-मूत्र परठना ही निषिद्ध है।

प्रश्न.१९ क्या जब बाहर बारिश गिर रही हो उस समय पानी के जीवों की रक्षा के लिये उच्चार आदि परठने का निषेध है?

उत्तर-हाँ, इससे भी यही स्पष्ट है कि असंज्ञी मनुष्यों की हमारे स्पर्श आदि से विराधना नहीं होती। अन्यथा क्या एकेन्द्रिय की रक्षा के लिए पंचेन्द्रिय की उपेक्षा होती?

प्रश्न.२० क्या मात्रक को बार-बार व्यवस्थित हिलाने से भी सम्मूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती है?

उत्तर-समाधान- मात्रक को बार-बार हिलाने से असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति होने, नहीं होने का, कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाए तो गतिशीलता का योनि नाश से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। तेज गति से बहती नदी में अप्कायिक, तुफान में वायुकायिक, बहती विद्युत में तेजस्कायिक आदि की उत्पति का निषेध नहीं माना जाता है और तो और नगर के बहते गटर में भी असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति मान रहे है अतः हिलाते रहने से सम्मूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती, यह कथन ठीक नहीं है।

प्रश्न.२१ यदि साधु का पैर मल-मूत्र से लिप्त हो जाए तो शास्त्रों में क्या करने का विधान है?

उत्तर-श्रीमद् आचारांग सूत्र में मल-मूत्रादि से लिप्त पैर को अचित्त कंकर, पत्थर वगैरह से मल कर एवं घिस कर साफ करने का विधान है, यदि असंज्ञी मनुष्य की विराधना शक्य होती तो जैसे-बारिश से भीगी हुई काया को पौंछने का श्रीमत् दशवैकालिक सूत्र में निषेध है वैसे ही मल-मूत्र की सफाई का भी निषेध होता।

प्रमाणः- श्रीमद् आचारांग सूत्र (दूसरा श्रुतस्कन्ध, पहला अध्ययन,

पंचम उद्देशक, सूत्र 353), श्रीमत् दशवैकालिक सूत्र (8वां अध्ययन, 7वीं गाथा)

प्रश्न.२२ यदि मुनि के मल में कृमि हो तो उनकी रक्षा का क्या विधान हैं?

उत्तर- ओघनिर्युक्ति में कहा गया है कि- यदि किसी मुनि के पेट में कीडे पड़ जाये एवं मल में कीड़े निकले तो उसके लिए विधान है कि वह मुनि छाया वाले स्थान में मल का विसर्जन करें। कदाचित् छाया न मिले तो मल विसर्जन के पश्चात् एक मुहूर्त तक (मल को छाया देता हुआ) बैठा रहे। वे कृमि (कीड़े) उतनी देर में स्वत: ही कालधर्म को प्राप्त हो जाते हैं। इससे भी समझ सकते हैं कि यदि कृमियों की तरह ही असंज्ञी मनुष्यों की कायिक विराधना संभव होती तो उनकी रक्षा के लिए भी उल्लेख होता, किन्तु चूंकि असंज्ञी मनुष्य की कायिक विराधना संभव ही नहीं है अत: उनकी रक्षा के लिए कोई वैसा उल्लेख नहीं किया गया।

(प्रमाण:- ओघनिर्युक्ति)

प्रश्न.२३ मृत शरीर को जलाने से किन जीवों की विराधना का उल्लेख है?

उत्तर-मृत शरीर को जलाने में विकलेन्द्रिय जीवों की हिंसा बताई गई है। असंज्ञी मनुष्य जो कि पंचेन्द्रिय है, उनकी हिंसा का अक्षर मात्र भी उल्लेख नहीं हैं तथा प्रायश्चित्त विधान में भी मृतक सम्बन्धी प्रायश्चित्त चतुर्गुरु है। यह प्रायश्चित्त असंज्ञी मनुष्य सम्बन्धी नहीं है क्योंकि पंचेन्द्रिय सम्बन्धी प्रायश्चित्त की शुरूआत ही षट्गुरु (छ:गुरु) से होती है। मृतक प्रकरण में पंचेन्द्रिय जितना प्रायश्चित्त का नहीं बताया जाना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि असंज्ञी मनुष्यों की हमारी कायिक प्रवृत्तियों से विराधना नहीं होती।

प्रश्न.२४ असंज्ञी मनुष्यों की विराधना सम्बन्धी प्रायश्चित का कोई विधान क्या किसी भी आगम एवं प्राचीन भाष्य, चूर्णि, टीका में है?

उत्तर- विभिन्न दोषों के लिये शास्त्रों एवं अन्य ग्रन्थों में प्रायश्चित का विस्तृत उल्लेख प्राप्त है। उनमें पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय,

वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पशु आदि की हिंसा सम्बन्धी प्रायश्चित का उल्लेख है लेकिन असंज्ञी मनुष्यों की विराधना का प्रायश्चित्त पाठ कहीं उल्लिखित नहीं है। जबकि उच्चार प्रस्रवणआदि का परिष्ठापन मुनि की दिनचर्या से जुड़ा एक आवश्यक अंग है। यह भी इस तथ्य का प्रबल संसूचक है कि असंज्ञी मनुष्य की कायिक विराधना संभव नहीं है।

प्रश्न.२५ असंज्ञी मनुष्य की विराधना मानने की परंपरा कब से चली?

उत्तर-आगम, भाष्य, टीका, चूर्णि आदि में तो असंज्ञी मनुष्य की हिंसा सम्बन्धी कोई चर्चा ही नहीं है। अत: यह निश्चित है कि यह परंपरा टीकाओं के काल से काफी बाद की है अर्थात् भगवान महावीर के निर्वाण के 1800-2000 वर्षों के बाद की ही है। कोई भी परंपरा कुछ समय से चले आने मात्र से उसे अविच्छिन्न रूप से चलना कहना ठीक नहीं हैं। आज चारों संप्रदायों में पुस्तकों का भरपूर उपयोग हो रहा है तो क्या यह माना जाए कि पुस्तकें रखने और उनका उपयोग करने की परंपरा भगवान महावीर के समय से चली आ रही है? नहीं। यदि भविष्य की बात करें तो चारों संप्रदायों में आज से 2000 वर्षों बाद माइक का प्रयोग होता देखकर क्या यह मानना ठीक रहेगा कि साधु का माइक में बोलने आदि की परंपरा भी भगवान महावीर के समय से अविच्छिन्न चली आ रही है?

असंज्ञीमनुष्य सम्बन्धी अन्य जिज्ञासाएं

प्रश्न.१ असंज्ञी मनुष्य की स्थिति १ सेकण्ड के लगभग २३वें हिस्से प्रमाण बताई है उनका गणित क्या है?

उत्तर-१ सेकण्ड के लगभग 23वें हिस्से प्रमाण का गणित:-

1 मुहूर्त में = 48 मिनट (1 मिनट में 60 सेकण्ड) होते हैं।
= 48 X 60 सेकण्ड
= 2880 सेकण्ड
1 मुहूर्त में = 1,67,77,216 आवलिका
तो

1 सेकण्ड में = 1,67,77,216 = 5825.42 आवलिका
2880

(नोट:- क्षुल्लक भव = 256 आवलिका)

5825.42 आवलिका = 1 सेकण्ड

1 आवलिका = 1 ÷ 5825.42 सेकण्ड

256 आवलिका = (1 ÷ 5825.42) X 256 सेकण्ड

= 1 ÷ 22.75 सेकण्ड

= 1/23 सेकण्ड

(लगभग 1 सेकण्ड का 23वां हिस्सा)

प्रश्न.२ शरीर के भीतर रहे रक्तादि में असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति क्या निरंतर होती है?

उत्तर- असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति की निरन्तरता न शरीर के भीतर संभव है, न ही शरीर के बाहर क्योंकि श्री प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद में असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति का विरह उत्कृष्ट 24 मुहूर्त बताया है।

प्रश्न.३ शरीर के भीतर कामल अशुचि रूप है तो क्या वह अस्वाध्याय का कारण है?

उत्तर-शरीर के भीतर का मल अशुचि रूप तो है ही, पर उसके कारण अस्वाध्याय नहीं है। अस्वाध्यायिक प्रकरण में ''अशुचि की समीपता'' को अस्वाध्याय का कारण बताया है और अशुचि की समीपता तभी मानी जाती है जब उसकी गंध आये या दिखाई दे। शरीर के भीतर रहा मल आदि न तो देखे जा सकते हैं, न ही सर्वदा उनकी गंध आती है। श्री स्थानांग सूत्र में औदारिक सम्बन्धी 10 अस्वाध्यायिक बताये हैं, उनमें एक ''असुइसामंते'' है जिसका अर्थ भी-अशुचि की गन्ध आने एवं दिखने को ''अशुचि की समीपता'' किया है। यदि अपान वायु की दुर्गन्ध आती हो तो जब तक गन्ध आए तब तक ही अस्वाध्याय रहती है।

प्रश्न.४ असंज्ञी मनुष्यों का अढ़ाई द्वीप के बाहर जन्म मरण होता है?

उत्तर - लोक स्वभाव ही ऐसा है कि अढ़ाई द्वीप के बाहर सम्मूर्च्छिम

मनुष्य का जन्म-मरण नहीं होता है।

प्रश्न.५ जंघाचारण मुनि आदि अढ़ाई द्वीप के बाहर नंदीश्वर द्वीप में जाते हैं, तो क्या उनके शरीर में असंज्ञी मनुष्य नहीं होते?

उत्तर- असंज्ञी मनुष्य अपने अत्यल्प आयु (1 सेकण्ड के 23वें हिस्से लगभग) के कारण अढ़ाई द्वीप के बाहर जाने से पूर्व ही मर जाते हैं। बाहर जाने के बाद क्षेत्र प्रभाव से वहाँ असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती तथा लोक स्वभाव के कारण बाहर जाने से कुछ समय पूर्व शरीर में रही अशुचि की योनि विध्वस्त हो जाती है।

प्रश्न.६ गर्भज मनुष्यों की शीतोष्ण योनि बताई है अतः वहाँ उष्ण योनि वाले असंज्ञी मनुष्य कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर-आगम एक ही स्थान पर शीत एवं उष्ण दोनों प्रकार की योनियों को स्वीकार करते हैं। जैसे - श्री प्रज्ञापना सूत्र में तेजस्कायिक में उष्ण योनि मानी है एवं निगोद के जीवों में शीत योनि। चूंकि सूक्ष्म तेजस्कायिक एवं सूक्ष्म निगोद दोनों ही सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है। अतः स्पष्ट है कि सम्पूर्ण लोक में सर्वत्र शीत योनि एवं उष्ण योनि दोनों एक साथ होती है। इतना जान लेने के बावजूद भी यदि ऐसा ही माना जाए कि स्त्रीपुरुषसंयोग में शीतोष्ण योनि ही होती है तो यह भी विचारणीय है कि क्या स्त्रीपुरुषसंयोग में मान्य शीतोष्ण योनि के आधार पर पूरे शरीर में सर्वत्र शीतोष्ण योनि ही मानी जाएगी?

दूसरी बात कि शरीर के भीतर उष्ण योनि मानें या शीतोष्ण, असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति तो उष्ण योनि में भी मानी है, शीतोष्ण योनि में भी मानी है तथा शीत योनि में भी मानी है। अतः असंज्ञी मनुष्यों को शरीर के भीतर उत्पन्न होने में कोई योनि बाधक नहीं है।

प्रश्न.७ यदि शरीर के भीतर असंज्ञी मनुष्य उत्पत्ति मानते हैं तो गर्भज मनुष्यों के पूरे शरीर को ही उनका उत्पत्ति स्थान मानना होगा?

उत्तर- यह कहना उचित नहीं है क्योंकि गर्भज मनुष्यों के शरीर को ही उत्पत्ति के स्थान रूप में कहा जाए तो (1) मनुष्यों के शरीर के प्रत्येक अंश में, चमड़ी आदि में भी असंज्ञी मनुष्यों के उत्पन्न होने की आपत्ति

आती है तथा (2) शरीर से पृथक् हो चुके उच्चार प्रस्रवण आदि में भी असंज्ञी मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं यह बात स्पष्ट नहीं होती। आगमकारों को शरीर के भीतर एवं बाहर रहे मनुष्य शरीर सम्बन्धी समग्र अशुचि स्थानों में असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति बतानी थी अतः एक ही उत्पत्ति स्थान बताने से गटर आदि सभी स्थानों का समावेष्ठा भी नहीं होता।

प्रश्न.८ ''विगयजीवकलेवरेसु'' यानि मृत शरीर में ही असंज्ञी मनुष्य होते हैं या जीवित शरीर में भी उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर- सजीव और निर्जीव दोनों ही शरीर में सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं। शास्त्रों में जगह-जगह पर ''कलेवर'' का अर्थ ''शरीर'' किया है, मृतक देह नहीं। श्री उत्तराध्ययन सूत्र 10वां अध्ययन गाथा 35 में ''अकलेवर'' = शरीर रहित, श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के 12वें अध्ययन में कलेवर का अर्थ शरीर किया है। कलेवर (शरीर) तो सजीव भी हो सकता है और निर्जीव भी।

-----●-----